RNI No. : UPHIN-2009/29369

डाक पंजीकरण : KANPUR HO/002/2022-24
प्रधान डाकघर कानपुर-डाक प्रेषण दिनांक 29/30

वार्षिक सदस्यता शुल्क 100/-

द्रविड़ भारत

www.dbindia.org.in

सामाजिक परिवर्तन का मासिक पत्र

सितम्बर-2021 | वर्ष - 13 | अंक : 08 | मूल्य : 5/-

सम्पादकीय

RNI No. : UPHIN-2009/29369

संपादक : उमेश्वरी देवी, मो.: 9005204074
संरक्षक मण्डल : मा. रामदीन अहिरवार (महोबा), मा. राम अवतार चौधरी (सहा.अभि. जलकल विभाग), मा. छविलाल वर्मा (चरखारी), मा. हरिनाथ राम (दिल्ली), मनीष कुमार मो. 9415053621
राज्य ब्यूरो प्रमुख उत्तर प्रदेश : सुनीता धीमान, 414/12, शास्त्री नगर, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 9450871741
सुनील कुमार, ढेलवा, गाजीपुर (उ.प्र.), मो.: 9935363730, 9170836363
क्षेत्रीय सम्पादकीय कार्यालय : 40/69, डी-5, श्यामलाल का हाता, परेड, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 8756157631
ब्यूरो प्रमुख कानपुर मण्डल : पुष्पेन्द्र गौतम, मल्हौसी, औरेया, उ.प्र. मो.: 9456207206
हरियाणा राज्य : डा. रमेश रंगा, ग्राम-सराय, औरंगाबाद, पो.-बहादुरगढ़,जिला-झज्जर (हरियाणा),09416347052
कानूनी सलाहकार : एड. रामप्रकाश अहिरवार, एड. यू.के. यादव, मोती लाल वर्मा, एड. विजय बहादुर सिंह राजपूत, एड. रमाकान्त धुरिया, रामऔतार वर्मा, एड. सुशील कुमार, कानपुर
मध्य प्रदेश राज्य : पुष्पेन्द्र कुमार कार्यालय : ग्रा. व पो.-रामटौरिया, जिला-छतरपुर
छत्तीसगढ़ राज्य : दिलीप कुमार कोसले, मो. : 09424168170
दिल्ली प्रदेश : C/o अनिल कुमार कनौजिया C-260, हर्ष विहार, हरिनगर एक्सटेंशन पार्ट-III, बदरपुर, नई दिल्ली-44, मो. : 09540552317
राजस्थान राज्य : रघुनाथ बौद्ध, श्याम रघु फुट वियर, दुकान नं.-1, गणेश मार्केट, पुलिस चौकी के सामने, अलवर, जिला-अलवर-301001, मो. : 09887512360, 0144-3201516
चिरंजीलाल बैरवा (व्यावस्थापक) मेहरा आदर्श विद्या मन्दिर, भीम नगर कालोनी, राज भट्टा, दिल्ली रोड, अलवर, जिला-अलवर, मो.-09829855349
बाबूलाल बौद्ध, अलवर, मो.-08058198233
संपादकीय/विज्ञापन प्रसार/पंजीकृत कार्यालय : ग्रा व पो.-रिवई (सुनैचा), जिला-महोबा (उ.प्र.) मो. : 9005204074, 8756157631
E-mail : dravinbharat1@gmail.com
प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी उमेश्वरी देवी द्वारा ग्रा. व पो.-रिवई (सुनैचा), जिला महोबा से प्रकाशित व श्रेय ऑफसेट प्रा. लि., 109/406, नेहरू नगर, कानपुर, 84/1, बी, फजलगंज, कानपुर से मुद्रित

प्रकाशित पत्रिका में प्रकाशित लेख, सामग्री, में संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। इसमें किसी भी प्रकार का दावा या विचार मान्य नहीं होगा। लेख के विवादित होने पर लेखक ही उत्तरदायी होगा समस्त विवादों का निपटारा महोबा न्यायालय में होगा पत्रिका का संपादन एवं संचालन पूर्णतयः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक है।

मिशन को बढ़ाने के लिए सहयोग करें -
भारतीय स्टेट बैंक, शाखा-पी.पी.एन. मार्केट, कानपुर
खाता सं.-33496621020 • IFSC CODE-SBIN0001784

कैसे जाये जाति

जब संविधान बना था तब संविधान निर्माताओं की मान्यता थी कि धीरे-धीरे जातियों का भेद टूटेगा और भारत एक सिविल सोसायटी का रूप ले लेगा। ऐसे में जातियां गौण हो जाएंगी। लेकिन उनकी यह मान्यता समय के साथ खंडित होती दिख रही है। जैसे-जैसे लोकतंत्र समय के हिसाब से बढ़ रहा है वैसे-वैसे जातियों का महत्व भी बढ़ रहा है। अब तो स्थिति यह हो गई है कि भारत में जाति के आधार पर राज्यों का स्वरूप सामने आ रहा है। मसलन हरियाणा मूलतः भाषाई आधार पर बना लेकिन अब एक जाति का राज्य बन गया है। इसी तरह पश्चिमी उत्तर प्रदेश में चौधरी अजित सिंह हरित प्रदेश की मांग कर रहे हैं। वे जाति के आधार पर उस इलाके को मांग रहे हैं। इसी तरह पूरे भारत में जहां जिस जाति का अधिक बोलबाला है, वह अपने लिए अलग राज्य की मांग कर रहा है। आंध्रप्रदेश में तेलगांना की मांग भी मूलतः एक विशेष जाति की ही मांग है। देश में अधिकांश नेता उसी क्षेत्र से चुनाव लड़ते हैं, जहां उनकी जाति का बाहुल्य होता है। जबकि संविधान निर्माताओं का लक्ष्य आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक न्याय पर आधारित समाज बनाता था। यदि नेता उनका अनुसरण करते तो जाति का प्रभुत्व खत्म हो गया होता परन्तु ऐसा नहीं हो पाया और अब जाति के आधार पर राजनीति की जाने लगी है। इसी तरह आज की राजनीति में आपराधिक प्रवृत्ति के लोगों का भी ग्राफ बढ़ता जा रहा है। शीर्ष नेताओं को छोड़कर अधिकांश छुटभैये नेता किसी न किसी माफिया के दलाल होते हैं। ट्रांसपोर्टर, प्रोपर्टी डीलर भी अब तेजी से चुनाव लड़कर किसी भी पार्टी से मोलभाव करके आसानी से उसमें शामिल हो जाते हैं। जबकि 1952 में यह सब संभव नहीं था। अब तो जातिवाद और सांप्रदायिकता दोनों देश के लिए खतरा हैं। इसके चलते देश का भविष्य भी अधर में है। एक बात मानकर चलना चाहिए कि दलित समस्या सिर्फ दलित नेता की समस्या नहीं, यह एक राष्ट्रीय समस्या है। इसलिए दलित समस्या को दलित बनाम अन्य के आइने से देखना ठीक नहीं है। संविधान में जब दलितों को राजनीति में लाने की कल्पना की गई थी तब सोचा गया था कि समाज में कुछ सुधार आएगा लेकिन आज गैरदलित दलितों के साथ राजनीति करने लगे हैं और दलित वर्ग को ठग रहे हैं। नेता दलित आंदोलन को अपने स्वार्थों के कारण छोटे-छोटे टुकड़ों में बांटने लगे हैं। स्वाधीनता के बाद 59 वर्ष के बाद भी सामान्य सीटों से दलित विधायक/सांसद नहीं जीतते। जयललिता करोड़ों के घोटाले के बाद भी जनसामान्य के कोप का शिकार नहीं बनतीं जबकि मायावती सबके कोप का शिकार रहती है। आजादी के पचास साल बाद भी दलित समुदाय दूसरे दर्जे के नागरिक का जीवन जी रहा है।

दक्षिण भारत में जातिवाद का और भी घिनौना रूप है। वहां की व्यवस्था आज भी मध्ययुगीन समाज की तरह है। उत्तर भारत में दलितों को फिर भी कुछ राहत है लेकिन दक्षिण भारत में जकड़न की स्थिति बनी हुई है। वहां छुआछूत की स्थिति अब भी व्यापक पैमाने पर है। गांवों और शहरों में दलित जातियों के अलग-अलग मोहल्ले और बस्तियां हैं। वे बस्तियां प्रायः गंदी और सुविधाहीन होती हैं। आज भी बड़ी संख्या में दलित अपने कम लाभकारी धंधों से ही गुजर बसर कर रहे हैं। ये पुश्तैनी धंधे खतरे से खाली नहीं हैं।

पिछले दिनों संघ परिवार द्वारा देश भर में चलाए गए गो-रक्षा के उन्मादपूर्ण आंदोलन में दलितों और अल्पसंख्यकों के खिलाफ नफरत और हिंसा की भावना भड़कायी गयी थी। हाल में जींद के पास अलोवा गांव में मरी गाय की खाल उतारते उच्च समाज द्वारा दलितों पर हमला किया गया और उन्हें पुलिस से पकड़वा दिया गया। ऐसी स्थितियां सामाजिक सद्भाव की संभावनाओं को समाप्त करती हैं। इस तरह की समस्याओं का समाधान अब जरूरी है। साथ ही जातिवाद का अंत दो मूल सिद्धांतो के साथ ही खत्म होगा। इन्हीं दो आधारों पर जातिवाद की यह व्यवस्था खड़ी है। पहला पेशागत शुद्धता और दूसरा रक्त शुद्धता। यानी पेशे की जाति से पहचान समाप्त हो। दूसरा शादी-विवाह जातियों के आधार पर न हों। इससे रक्त शुद्धता का सिद्धान्त समाप्त हो जाएगा। जैसे किसी व्यक्ति द्वारा रामायण जला देने पर उसे कोई समाज से बाहर नहीं निकालता लेकिन अपने से नीची जाति में शादी करने पर उसे समाज से निकाल दिया जाता है। कहीं-कहीं तो जान से भी मार दिया जाता है। आखिर यह सब क्या हैं? इसी तरह से व्यक्ति को उसके पेशे से पहचाना जाता है कि वह किस जाति का है। यह सब ठीक नहीं है। जब तक ऐसा रहेगा जाति का भेद और यह समस्या भी बनी रहेगी।

lkHkkj &
Hkkjrh; lekt vkj tkfrxr vR;kpkj
i"B l- 15 l 16
pUn Hkku i lkn

धर्म परिवर्तन करने वाले की स्थिति

I. गांधी और ईसाई धर्म के प्रति उनका प्रतिरोध,
II. ईसाई धर्म और समाज–सेवा,
III. ईसाई धर्म और गैर–ईसाई धर्म,
IV. ईसाई धर्म और धर्म–परिवर्तन करने वालों की भावना, और
V. ईसाई संप्रदाय और उसकी सामाजिक स्थिति।

I

सन् 1928 में इंटरनेशनल फेलोशिप की बैठक हुई। इस संस्था का उद्देश्य है कि विभिन्न धर्मों के लोगों के बीच भाईचारे की भावना बढ़ाई जाए। इस बैठक में जहां ईसाई मिशनरियों ने भाग लिया, वहां हिंदुओं और मुसलमानों ने भी भाग लिया। श्री गांधी भी मौजूद थे। इस बैठक में यह सवाल उठाया गया कि यह भाईचारा अपने आदर्श की कसौटी पर कहां तक खरा उतर सकता है, यदि आदर्श का पालन करने वाले लोग दूसरों का धर्म बदल कर उन्हें अपने धर्म में शामिल करना चाहें। बहस में श्री गांधी ने भी भाग लिया। उनके दोस्त श्री सी.एफ. एंड्रयूज ने चर्चा के बारे में इस प्रकार लिखा है :

इस सवाल के पीछे भारत में ईसाई मिशनरी की स्थिति को निश्चित चुनौती थी। उदारमना मिशनरी फेलोशिप में अति आनंद का अनुभव कर रहे थे।... फिर महात्मा गांधी ने घोषणा की। उन्होंने कहा कि ऐसा करते समय या फेलोशिप का सदस्य बनते समय यदि मन के किसी कोने में तनिक भी यह कामना या विचार हो कि फेलोशिप के किसी अन्य सदस्य पर प्रभाव डाला जाए या उसका धर्म–परिवर्तन किया जाए, तो आंदोलन की भावना मिट्टी में मिल सकती है। यदि किसी के मन में ऐसी कामना हो, तो उसे फेलोशिप से अलग हो जाना चाहिए।

ईसाई मिशनरियों ने चर्चा को आगे बढ़ाते हुए जब पूछा, 'यदि उनके पास दुनिया का सबसे बड़ा खजाना हो तो क्या उसे बांटने की कामना भी गलत होगी, तो श्री गांधी ने तुरंत उसका दो–टूक जवाब दे दिया। श्री एंड्रूज कहते हैं, 'गांधीजी अडिग रहे।' उन्होंने दृढ़ता से कहा, 'ऐसी कामना का विचार भी गलत है और मैं इस दृष्टिकोण पर अडिग रहूंगा।'

ईसाईयों द्वारा धर्म–परिवर्तन के प्रति श्री गांधी का विरोध अब तो जग को जाहिर हो गया है। 1936 के बाद से तो वह मिशनरियों के हर प्रकार के प्रचार के कट्टर विरोधी हो गए हैं। उनकी खास आपत्ति यह है कि मिशनरी ईसाई धर्म का प्रचार अस्पृश्यों के बीच कर रहे हैं। ईसाई मिशनों तथा ईसाई धर्म में अस्पृश्यों को शामिल किए जाने का उनका विरोध कतिपय प्रस्थापनाओं पर आधारित है। उनका प्रतिपादन उन्होंने बड़े ही बेबाक शब्दों में किया है। मेरे विचार में सार रूप में उनके दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने के लिए निम्न चार प्रस्थापनाएं पर्याप्त होंगी। वह कहते हैं :

I. मेरा दृष्टिकोण है कि सभी धर्म मूलतः समान हैं। सभी धर्मों के प्रति हमारी सहज श्रद्धा धर्म जैसी ही होनी चाहिए। ध्यान रहे, आपसी सहिष्णुता नहीं, अपितु बराबर की श्रद्धा।

II. (मिशनरियों) मैं बस केवल यही अपेक्षा करता हूं कि वे सच्चे ईसाइयों जैसा जीवन जिएं, न कि उसकी टीका करें। आपका जीवन हमें संदेश दे। अंधे लोग गुलाब को तो नहीं देख पाते, पर उसकी गंध को अनुभव करते हैं। गुलाब के सिद्धांत का यही रहस्य है, लेकिन यीशु का सिद्धांत तो गुलाब के सिद्धांत से भी अधिक सूक्ष्म और सुगंधमय है। यदि गुलाब के लिए किसी एजेंट की जरूरत नहीं, तो मसीहा के सिद्धांत के लिए एजेंट की कैसी जरूरत।

ईसाई मिशनों के कार्य के बारे में वह कहते हैं :

III. मिशनरी सामाजिक कार्य को निष्काम भाव से नहीं करते, अपितु वह तो सामाजिक सेवा प्राप्त करने वालों के उद्धार का एक साधन है। .... जब आप चिकित्सा–सहायता करते हैं तो आप पुरस्कार के रूप में चाहते हैं कि आपके मरीज ईसाई बन जाएं।

अस्पृश्यों के बारे में वह कहते हैं :

IV. निश्चय ही मेरा विचार है.... कि हरिजनों का तथा भारतीयों का विशाल जनसमूह ईसाई धर्म के प्रस्तुतीकरण को नहीं समझ सकता और सामान्यतः धर्म–परिवर्तन, जहां भी वह किया गया है, आध्यात्मिकता की किसी भी दृष्टि से आध्यात्मिक कार्य नहीं रहा है। वे तो सुविधा के लालच पर किए गए धर्म–परिवर्तन हैं। जहां तक... सापेक्ष गुण–दोषों के बीच भेद करने की बात है, उनकी (हरिजनों) स्थिति गाय से बेहतर नहीं है। हरिजनों के पास न दिमाग है, न बुद्धि है और न ईश्वर और अनीश्वर के अंतर को समझने की योग्यता है।

ईसाई मिशनों को क्या करना उचित होगा, उसके बारे में श्री गांधी सलाह देते हैं, पर उनकी भाषा कुछ अप्रिय है। वह कहते हैं :

यदि ईसाई मिशन ईमानदारी से काम करेंगे.... तो उन्हें हरिजनों के धर्म–परिवर्तन की भद्दी होड़ छोड़नी होगी।....

.....भूल जाइए कि आप गैर–ईसाइयों के देश में आए हैं और सोचिए कि आपकी भांति वे भी प्रभु की खोज में हैं, जरा अनुभव कीजिए कि आप वहां उन्हें अपनी आध्यात्मिक संपदा देने नहीं जा रहे हैं, बल्कि आप वहां भौतिक संपदा देंगे, जिसका आपके पास काफी भंडार है। फिर आप बिना किसी मानसिक संकोच के कार्य करेंगे और उसके द्वारा आप अपना आध्यात्मिक खजाना देंगे। मुझे जानकारी है कि आप मानसिक संकोच से ग्रस्त हैं, यानी आप सेवा के बदले किसी व्यक्ति से धर्म–परिवर्तन की आशा करते हैं, वह मेरे और आपके बीच खाई पैदा करती है।

भारत का इतिहास ही भिन्न प्रकार से लिखा जाता, यदि ईसाई भारत में हमारे बीच भाइयों की भांति रहने के लिए आते और यदि कोई सुरभि है तो उसे हमारी सुरभि में व्याप्त कर देते।

ईसाई मिशनों तथा उनके कार्य के प्रति श्री गांधी का यह विरोध काफी हाल का है। जहां तक मुझे जानकारी है, वह येवला निर्णय से परे का नहीं हो सकता।

वह हाल का भी है और विचित्र भी। मेरी जानकारी है कि इस्लाम में अस्पृश्यों को शामिल किए जाने के प्रति इतनी स्पष्ट और दृढ़ रीति से विरोध की कोई घोषणा उन्होंने नहीं की है। अस्पृश्यों को अपने धर्म में शामिल करने की अपनी योजना को मुसलमानों ने गोपनीय नहीं रखा है। जब 1923 में कोकोनाडा में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ था तो उसकी अध्यक्षता करते हुए मौलाना मोहम्मद अली ने कांग्रेस के मंच से खुलेआम इस योजना की घोषणा की थी। अपने अध्यक्षीय भाषण में मौलाना ने साफ–साफ कहा था:

(हिंदुओं और मुसलमानो के बीच) आलमों और पीपल के पेड़ों और गाजे–बाजे के साथ जुलूसों के बारे में झगड़े वास्तव में बचकाना बातें हैं। लेकिन एक प्रश्न है, जिसे अमैत्रीपूर्ण कार्य की शिकायत के लिए सहज ही आधार बनाया जा सकता है, यदि सांप्रदायिक गतिविधियों का शांति के साथ समन्वय नहीं किया जाता। यह सवाल है दलित वर्गों के धर्म–परिवर्तन का, यदि हिन्दू समाज उन्हें तेजी से आत्मसात नहीं करता। ईसाई मिशनरी पहले ही जुड़े हुए हैं और कोई भी उनसे लड़ाई–झगड़ा नहीं करता। लेकिन जैसे ही कोई मुस्लिम मिशनरी सोसाइटी उस प्रयोजन के लिए बनाई जाती है, वैसे ही हिंदू प्रेस में चीखने–चिल्लाने की पूरी गुंजाइश पैदा हो जाती है। एक प्रभावशाली तथा धनवान सज्जन ने मुझे सुझाव दिया है कि वह दलित वर्गों के धर्म–परिवर्तन के लिए बड़े पैमाने पर (मुस्लिम) मिशनरी सोसाइटी का गठन कर सकते हैं। उनका कहना है कि यह संभव होना चाहिए कि प्रमुख हिंदू महानुभावों के साथ समझौता हो जाए और देश को दो अलग–अलग क्षेत्रों में बांट दिया जाए, जहां हिंदू और मुलसमान मिशनरी अपने–अपने इलाकों में काम कर सकें। हर संप्रदाय हर वर्ष या उससे अधिक अवधि के लिए, यदि आवश्यक हो, आकलन तैयार करे कि वह कितनी संख्या में लोगों को आत्मसात या धर्म में शामिल करने के लिए तैयार है। निश्चय ही इन आंकड़ों का आधार यह होगा कि प्रत्येक के पास कितने कार्यकर्ता और कितनी पूंजी है, और उसे पिछली अवधि के वास्तविक आंकड़ों के आधार पर परखा जाएगा। इस प्रकार हर संप्रदाय को छूट होगी कि वह आत्मसातकरण और धर्म–परिवर्तन या या सुधार का कार्य कर सके और अपनी टकराव की भी गुंजाइश न रहे।

इससे अधिक स्पष्टवादिता और क्या हो सकती है। कांग्रेस के मंच से इस घोषणा से अधिक व्यावहारिक और दुनियादारी की बात और क्या हो सकती है। लेकिन मुझे पता नहीं है कि श्री गांधी ने कभी उसकी आलोचना उस प्रकार से की है, जिस प्रकार अस्पृश्यों के धर्म–परिवर्तन के लिए ईसाई मिशनों के प्रयास की निंदा वह अब कर रहे हैं। श्री गांधी के शिविर से किसी ने भी इस अमर्यादित मुस्लिम सुझाव का प्रतिरोध नहीं किया है। शायद वे ऐसा कर भी नहीं सकते, क्योंकि कांग्रेसी हिंदुओं का विचार है कि मुसलमान जिस बात को अपना मजहबी फर्ज मानें, उसे पूरा करने में मुसलमानों की मदद करना उनका कर्तव्य है। उनका विचार है कि धर्म–परिवर्तन मुसलमानों का मजहबी फर्ज है और उससे इंकार नहीं किया जा सकता। जो भी हो, जैसा कि 1920 में जार्ज जोसेफ ने कहा था, उसके अनुसार कांग्रेस के हिंदू नेताओं का विचार था, हिंदुओं का यह धार्मिक कर्तव्य है कि वे जजीरूत–अल–अरब में अरबों पर तुर्की की खिलाफत को बरकरार रखने में मुसलमानों की सहयाता करें, क्योंकि मुस्लिम धर्म–विज्ञानियों तथा राजनेताओं ने हमें आश्वासन दिलाया है कि यह उनका मजहबी फर्ज है। यह अस्वाभाविक बात थी, क्योंकि इसका अर्थ था अरबों पर विदेशी हुकूमत को बनाए रखना, लेकिन हिंदुओं को इसे अपने गले से नीचे उतारना पड़ा, क्योंकि उनसे यह आग्रह किया गया कि वह हिंदुओं के धार्मिक कर्तव्य का हिस्सा है। यदि यह सच है तो धर्म–परिवर्तन के अभियान में गांधी ईसाइयों की मदद क्यों नहीं करते, क्योंकि धर्म–परिवर्तन भी उनके धार्मिक कर्तव्य की पूर्ति है।

अतः यह समझ में नहीं आता कि आज इस कारण अलग मापदंड क्यों अपनाया जा रहा है कि ईसाई उनमें जुटे हुए हैं। अतः श्री जार्ज जोसेफ ने सीमा का उल्लंघन नहीं किया, जब उन्होंने कहा :

एकमात्र अंतर यह है कि मुस्लिमों की संख्या साढ़े सात करोड़ और ईसाइयों की केवल 60 लाख है। मुस्लिमों से दोस्ती करना लाभकारी हो सकता है, क्योंकि वे राष्ट्रवाद के मार्ग का कांटा बन सकते हैं। ईसाइयों का कोई महत्व नहीं है, क्योंकि वे अल्प संख्या में हैं।

श्री गांधी मुसलमान तथा ईसाइयों की सापेक्ष संख्या और भारतीय राजनीति में उनके सापेक्ष महत्व जैसी बातों को प्रभावित होते हैं, यह बात उस शब्दावलि से स्पष्ट हो जाती है, जिसे वह उस निंदा के लिए इस्तेमाल करते हैं, जिसे वह प्रचार की निंदात्मक शैली कहते हैं। जब ऐसा प्रचार ईसाई मिशनरियों की ओर से होता है तो वह उनकी निंदा के लिए निम्न भाषा का प्रयोग करते हैं। (मूल अंग्रेजी की पांडुलिपि में उद्धरण नहीं है–संपादक)

दूसरी ओर जब वह मुस्लिमों की ओर से होने वाले प्रचार का विरोध करते हैं, तो वह केवल इतना कहते हैं :

कैसे खेद की बात है कि मिशन में लोगों को लुभाने के लिए धर्म को भद्दे भौतिकवाद के घटिया स्तर पर पटक दिया जाता है, जिसके पैरों तले करोड़ों मानव–प्राणियों की चिरपोषित भावनाओं को रौंदा जाता है।

मुझे आशा है कि पर्चे को मननशील मुसलमानों का समर्थन प्राप्त नहीं हैं। उन्हें इसे पढ़कर यह अनुभव कर लेना चाहिए कि ऐसे पर्चे कितना उत्पात पैदा कर सकते हैं।

मेरे संवाददाता ने मुझसे पूछा है कि उपद्रव का कैसे सामना करना चाहिए। एक उपचार का प्रयोग मैंने किया है, यानी इसके निंदात्मक प्रचार को जिम्मेदार मुस्लिम जगत के ध्यान में लाया जाए। वह स्वयं प्रकाशन के प्रति स्थानीय मुसलमान नेताओं का ध्यान आकर्षित कर सकते हैं। दूसरा तथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य आंतरिक शुद्धि का है। जब तक हिंदू समाज में अस्पृश्यता की स्थिति बनी रहती है, उस पर बाहर से हमले होने की संभावना बनी रहेगी। ऐसे हमलों को वह तभी रोक सकेगा, जब

अस्पृश्यता के पूर्ण उन्मूलन के रूप में शुद्धि की एक ठोस तथा अभेद्य दीवार खड़ी कर दी जाए।

पहले विरोध की उग्रता तथा दूसरे की विनम्रता काफी स्पष्ट है। निश्चय ही गांधी को एक चालाक 'पक्षपाती' मानना पड़ेगा।

लेकिन मुस्लिम तथा ईसाई प्रचार के प्रति उनके दृष्टिकोण में इस भेदभाव के अलावा ईसाई मिशनों के विरूद्ध श्री गांधी के तर्कों में क्या कोई वैधता हैं? उनमें निरा चातुर्य है। उनमें कोई गहराई नहीं है। वे एक बेबस व्यक्ति के घोर निराशाभरे तर्क हैं। श्री गांधी शुरूआत ही समान सहिष्णुता और समान श्रद्धा के बीच विभेद से करते हैं। 'समान श्रद्धा' एक नई अभिव्यक्ति है। यह समझ पाना कठिन है कि उसके द्वारा वह क्या विभेद करना चाहते हैं। लेकिन नई अभिव्यक्ति महत्वपूर्ण है। पुरानी अभिव्यक्ति 'समान सहिष्णुता' गलती की गुजांइश दर्शाती है। दूसरी ओर, 'समान श्रद्धा' मानती है कि सभी धर्म समान रूप से सच्चे और समान महत्व के हैं। यदि मैंने उन्हें ठीक से परखा है तो उनका आधार–वाक्य न केवल तर्क की, बल्कि इतिहास की दृष्टि से भी नितांत भ्रामक है। मान लीजिए कि धर्म का लक्ष्य प्रभु तक पहुंचना है, और मैं नहीं मानता कि वह लक्ष्य है और धर्म उस तक पहुंचने का मार्ग है, पर यह नहीं कहा जा सकता कि हर धर्म निश्चय ही प्रभु तक ले जाएगा। न ही यह कहा जा सकता है कि हर मार्ग, भले ही वह अंततः प्रभु तक ले जाता हो, सही मार्ग है। हो सकता है कि (सभी विद्यमान धर्म झूठे हों) और सर्वांगपूर्ण धर्म का अभी तक पता न चला हो। लेकिन तथ्य यह है कि धर्म पूर्णतः सत्य नहीं हैं। अतः एक धर्म के अनुयायियों को अधिकार हैं, वस्तुतः उनका कर्तव्य है कि वे अपने भटके मित्रों को बता दें कि उनकी दृष्टि में सत्य क्या है। अस्पृश्य की स्थिति गाय से बेहतर नहीं है, यह एक ऐसा कथन है जिसे कहने का दुस्साहस केवल कोई विवेकशून्य अथवा अंहकारी व्यक्ति ही कर सकता है। यह कोरी बकवास है। श्री गांधी यह कहने का दुस्साहस करते हैं क्योंकि वह स्वयं को ऐसा महापुरूष मानने लगे हैं कि अज्ञान जनता उनके कथनों पर आपत्ति नहीं करेगी और बेईमान बुद्धिजीवी वर्ग उनकी हर बात का समर्थन करेगा। उनके तर्क की सर्वाधिक विचित्र बात यह है कि वह ईसाई मिशनों द्वारा जुटाई जाने वाली भौतिक संपदा को ग्रहण करना चाहते हैं। वह उनकी आध्यात्मिक संपदा को ग्रहण करना चाहते हैं, पर उनकी शर्त है कि मिशनरी उन्हें बिना किसी बंधन के भौतिक संदपा ग्रहण करने का न्यौता दें। (वह प्रतिदान के खिलाफ है) यह समझ पाना कठिन है कि किस कारण श्री गांधी कहते हैं कि मिशनरियों की सेवाएं प्रलोभन हैं और धर्म–परिवर्तन सुविधा का लालच देने वाला धर्म–परिवर्तन है। क्यों इस बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता कि मिशनरियों की ये सेवाएं दर्शाती हैं कि ईसाइयों की दृष्टि में पीड़ित मानवता की सेवा करना उनके धर्म की अनिवार्य अपेक्षा है? जिस प्रक्रिया के द्वारा किसी व्यक्ति को ईसाई धर्म की ओर आकर्षित किया जाता है, उसके प्रति क्या यह गलत दृष्टिकोण होगा? यह गलत है, ऐसा तो केवल पूर्वाग्रही ही कहेगा।

श्री गांधी के ये सभी तर्क प्रस्तुत किए जाते हैं, ताकि ईसाई मिशनरी अस्पृश्यों को ईसाई न बना सकें। कोई भी इस बात का खंडन नहीं करेगा कि श्री गांधी को अधिकार है कि वह हिंदू धर्म के हित में अस्पृश्यों की रक्षा करें। लेकिन उस अवस्था में उन्हें दो–टूक शब्दों में मिशनों से यह कह देना चाहिए था, 'अपना काम रोक दो, अब हम अस्पृश्यों की तथा अपनी रक्षा करना चाहते हैं। हमें अवसर दो।' खेद है कि उन्होंन मिशनरियों के उत्पात का सामना करने के लिए ईमानदारी का यह तरीका नहीं अपनाया। कोई कुछ भी कहे, पर निश्चय ही सभी अस्पृश्य, चाहे उन्होंने धर्म बदला हो या न बदला हो, इस बारे में सहमत होंगे कि श्री गांधी ने ईसाई मिशनों के प्रति घोर अन्याय किया है। सदियों तक ईसाई मिशनों ने उन्हें यदि शरण नहीं, आश्रय तो दिया ही है।

जरूरी नहीं कि श्री गांधी का यह रवैया भय दिखाकर मिशनरियों अथवा अस्पृश्यों को रोक सके। ईसाई धर्म भारत में अपनी जड़ें जमा चुका है। यदि उसे दबाने के लिए हिंदू राष्ट्रवाद के उन्माद में अपनी राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक शक्ति का दुरूपयोग नहीं करेंगे, तो वह जिंदा रहेगा और सदा ही उसकी संख्या और प्रभाव में वृद्धि होती रहेगी।

साभार – बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर
सम्पूर्ण वाङ्मय खंड–10, पृष्ठ सं. 385 से 391
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

उनकी कामनाएं हमारे लिए कानून हैं

I. /ke] d: LFkku ij v/ke]
II. eu vkj /ke]
III. vk/kfud ifr : i] rFkk
IV. pfj= vkj nf"Vdk.k ij /ke dk izHkko

जो भी अस्पृश्यों के आंदोलन को कुचलने के लिए हिंदुओं की अराजकता के बारे में पढ़ता है, मुझे विश्वास है कि उसे गहरा धक्का लगेगा। निश्चय की वह यह सवाल पूछेगा कि किस कारण हिंदू इस अराजकता में लिप्त होता है। कोई भी यह नहीं कहेगा कि ऐसा प्रश्न स्वाभाविक प्रश्न नहीं होगा कि अस्पृश्य यदि साफ वस्त्र पहनता है तो उस पर अत्याचार क्यों किया जाए? हिंदू को उससे क्या आघात पहुंच सकता है? अस्पृश्य के साथ क्यों छेड़–छाड़ की जाए, याद वह अपने घर पर खपरैल की छत डालता है? हिंदू का उससे क्या बिगड़ता है? अस्पृश्य को क्यों पीड़ा पहुंचाई जाए, यदि वह अपने बच्चों को स्कूल भेजना चाहता है? उससे हिंदू की क्या हानि होती है? अस्पृश्य को क्यों विवश किया जाए कि वह मृत पशुओं को उठाए, सड़ा–गला मांस खाए और घर–घर जाकर अपने भोजन के लिए गिड़गिड़ाए? हिंदुओं को क्या घाटा होता है, यदि वह इन कामों को न करे? हिंदू को क्यों आपत्ति करनी चाहिए, यदि अस्पृश्य अपना धर्म बदलना चाहता है? उसके धर्म–परिवर्तन से हिंदू क्यों नाराज हों और बौखलाएं? हिंदू स्वयं को क्यों अपमानित अनुभव करें, यदि अस्पृश्य अपना सुंदर एवं सम्मानीय नामकरण करता है? किसी अस्पृश्य का उत्तम नाम हिंदू पर प्रतिकूल प्रभाव कैसे डाल सकता है? हिंदू को क्यों आपत्ति करनी चाहिए, यदि कोई अस्पृश्य अपने घर का द्वार मुख्य सड़क की ओर खोलता है? उससे उसका क्या बनता–बिगड़ता है? हिंदू को क्यों आपत्ति करनी चाहिए, यदि किन्हीं निश्चित दिवसों पर उसके कानों तक किसी अस्पृश्य की आवाज पहुंचती है? उससे वह बहरा तो नहीं हो सकता। हिंदू को क्यों अप्रसन्नता व्यक्त करनी चाहिए, यदि कोई अस्पृश्य कोई काम करता है, प्राधिकार वाला कोई पद प्राप्त कर लेता है, भूमि खरीद लेता है, व्यापार करता है, आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो जाता है और उसकी गिनती खाते–पीते लोगों में होने लगती है? सभी हिंदू, चाहे सरकारी हों या गैर–सरकारी, मिलकर अस्पृश्यों का दमन क्यों करते हैं? सभी जातियां, चाहे वे आपस में लड़ती–झगड़ती रहें, हिंदू धर्म की आड़ में एकजुट होकर क्यों साजिश करती है और अस्पृश्यों को असहाय स्थिति में रखती हैं।

निश्चय की यह सब परी लोक की कथा–सी लगती है। लेकिन जिसने पिछले अध्याय में वर्णित हिंदुओं के अत्याचार की कथाओं को पढ़ा है, उसे मालूम होगा कि यह निंदनीय प्रश्न तथ्यों पर आधारित हैं। निश्चय की तथ्य काल्पनिक कथ्य से भी अद्भुत होता है। लेकिन सबसे मजेदार बात यह है कि ये सब कारनामें वे हिंदू करते हैं, जो सामान्यतः भीरू होते हैं, यहाँ तक कि उन्हें कायर भी कहा जाता है। सामान्यतः हिंदू अति विनम्र लोग होते हैं। उनमें मुस्लिमों जैसी उग्रता अथवा कटुता नहीं होती। लेकिन जब हिंदू जैसे अति विनम्र लोग बेशर्मी और निर्ममता से आगजनी, लूटमार और हिंसा का सहारा लेकर पुरूषों, महिलाओं और बच्चों पर अत्याचार करने लगते हैं, तो वह विश्वास करना पड़ता है कि निश्चय ही कोई ऐसा बाध्यकारी कारण होगा, जो अस्पृश्यों के इस विद्रोह को देखने पर हिंदुओं को पागल बना देता है और वे ऐसी अराजकता पर उतारू हो जाते हैं।

निश्चय ही ऐसे विचित्र और अमानवीय व्यवहार का कोई स्पष्टीकरण तो होना चाहिए। वह क्या है?

यदि आप किसी हिंदू से पूछेंगे कि वह ऐसा बर्बर व्यवहार क्यों करता है, क्यों वह घोर अपमान अनुभव करता है जब अस्पृश्य और सम्मानजनक जीवन जीने का प्रयास करते हैं, तो उसका उत्तर सीधा–सा होगा। वह कहेगा, 'अस्पृश्यों के जिस प्रयास को आप सुधार कहते हैं, वह सुधार नहीं है। वह हमारे धर्म का घोर अपमान है।' यदि आप उससे फिर पूछेंगे कि इस धर्म की व्यवस्था कहां है तो पुनः उसका उत्तर एकदम सीधा–सा होगा, 'हमारा धर्म हमारे शास्त्रों में है।' हिंदू, पूर्वाग्रह–रहित व्यक्ति की दृष्टि से, अस्पृश्यों के उस न्यायोचित विद्रोह का दमन कर रहा है, जो वे हिंसा, लूटमार, आगजनी पर आधारित मूलतः अन्यायपूर्ण प्रणाली के विरूद्ध कर रहे हैं। आधुनिक व्यक्ति को लगता है कि दमन का सहारा लेकर हिंदू नितांत धर्म–विरोधी कार्य कर रहा है या हिंदूओं की प्रचलित शब्दावलि में कहा जाए तो वह 'अधर्म' कर रहा है। लेकिन हिंदू इसे कदापि स्वीकार नहीं करेगा। हिंदू का विचार है कि 'धर्म' का उल्लंघन तो अस्पृश्य कर रहे हैं और अराजकता के उसके कर्म तो अधर्म से लगते हैं। उनकी प्रेरणा उसे धर्म के पुनरूद्धार हेतु उसके पावन कर्तव्य से मिलती है। यह एक ऐसा उत्तर है जिसकी सत्यता को वे लोग नहीं नकार सकते, जो हिंदुओं की मानसिकता से परिचित हैं। लेकिन इससे एक और प्रश्न उत्पन्न होता है कि वे धर्म क्या हैं, जिनकी व्यवस्था शास्त्रों ने की है और उनमें सामाजिक संबंधों के बारे में क्या नियम निर्धारित किए गए हैं।

II

'धर्म' शब्द संस्कृत भाषा से उपजा है। यह भी उन संस्कृत शब्दों में से एक है, जो किसी निश्चित परिभाषा के सभी प्रयासों का उल्लंघन करते हैं। प्राचीन–काल में इस शब्द का उपयोग विभिन्न अर्थों में होता था, भले ही वे समानार्थी लगते थे। यह देखना रूचिकर होगा कि किस प्रकार 'धर्म' शब्द अर्थ–संक्रमणों से होकर गुजरा है। लेकिन यह उसके लिए उपयुक्त अवसर नहीं है। इतना कहना पर्याप्त होगा कि शीघ्र ही 'धर्म' ने एक निश्चित अर्थ धारण कर लिया और उसके अर्थ के बारे में कोई संशय नहीं रह गया। 'धर्म' शब्द का अर्थ है, हिंदू समाज के सदस्य के रूप में, किसी एक जाति के सदस्य के रूप में और जीवन की किसी विशिष्ट अवस्था में व्यक्ति के रूप में किसी व्यक्ति के विशेषाधिकार, कर्तव्य तथा दायित्व और उसके आचरण का स्तर।

सभी हिंदू मानते हैं कि धर्म के प्रमुख स्त्रोत हैं–वेद, स्मृति और रीति–रिवाज। लेकिन जहां तक धर्म का संबंध है, वेदों तथा स्मृतियों में एक अंतर है। धर्म के जिन विकसित नियमों को हम देखते हैं, निश्चय ही उनके मूलाधार वेदों में हैं। अतः यह कहना उचित है कि वेद धर्म के स्त्रोत हैं। लेकिन वेद नहीं कहते कि वे धर्म पर औपचारिक ग्रंथ हैं। धर्म के मामलों पर उनमें सिलसिलेवार निश्चयात्मक विधियां (आदेश) नहीं हैं। धर्म संबंधी कतिपय मामलों के बारे में उनमें केवल असंबद्ध उदगार हैं। दूसरी ओर, स्मृतियां धर्म के बारे में औपचारिक ग्रंथ हैं। धर्म के बारे में उनमें कानून हैं। कानून के सही अर्थ में उन्होंने धर्म के कानून का रूप

धारण किया है। यदि इस बारे में कोई विवाद हो कि क्या धर्म है और क्या अधर्म है, तो उसका फैसला स्मृति में दिए गए नियम के पाठ के संदर्भ में ही किया जा सकता है। अतः हिंदू जिसे धर्म कहते हैं, उसका वास्तविक स्त्रोत स्मृतियां हैं। चूंकि धर्म और अधर्म का निर्णय करने में उन्हें प्रमाण माना जाता है, अतः स्मृतियों को धर्म के नियम निर्धारित करने वाले धर्म-शास्त्रों की संज्ञा दी गई है।

प्राचीन-काल से परंपरा से जो स्मृतियां चली आ रही हैं, उनकी संख्या के बारे में अलग-अलग अनुमान है। इनकी कम-से-कम संख्या पांच है और अधिक से अधिक एक सौ। ध्यान देने योग्य महत्व की बात यह है कि जहां तक प्रमाण का संबंध है, ये सभी स्मृतियां समान नहीं हैं। उनमें से अधिकांश अस्पष्ट हैं। उनमें से केवल कुछ को इतना प्रामाणिक समझा गया कि उन पर लेखक भाष्य एवं टीकाएं लिख सकें। यदि किसी स्मृति के महत्व को इस कसौटी पर परखा जाए कि उसका भाष्य किया गया है या नहीं, तो उसके आधार पर जिन स्मृतियों का उच्च स्तरीय और प्रामाणिक कहा जा सकेगा, वे हैं 'मनुस्मृति' 'याज्ञवल्क्य स्मृति' और 'नारद स्मृति'। इन स्मृतियों में 'मनुस्मृति' का स्थान सर्वोपरि है। वह उत्कृष्ट रूप में संपूर्ण धर्म का स्त्रोत है।

यदि यह जानना है कि वह कौन-सा धर्म है जिसके लिए हिंदू अस्पृश्यों से लड़ने-मरने के लिए तैयार हो जाता है, तो हमें स्मृतियों के नियमों को, खासकर 'मनुस्मृति' के नियमों की जानकारी हासिल करनी ही होगी। इन नियमों के कुछ ज्ञान के बिना अस्पृश्यों के विद्रोह के प्रति हिंदुओं की प्रतिक्रिया को समझना संभव नहीं होगा। अपने प्रयोजन के लिए यह जरूरी नहीं है कि हम स्मृतियों में वर्णित धर्म के समूचे क्षेत्र की छानबीन उसकी सभी शाखाओं-प्रशाखाओं सहित करें। धर्म की उस शाखा को जान लेना काफी होगा, जिसे आधुनिक शब्दावलि में स्वीय विधि (पर्सनल ला) कहा जाता है या आम भाषा में कहें तो धर्म का वह अंग जिसका संबंध हैसियत पर आधारित अधिकार, कर्तव्य या क्षमता से है।

अतः मैं नीचे 'मनुस्मृति' से कुछ जरूरी मूलपाठों का उद्धरण देना चाहूंगा। उनसे से भली-भांति पता चल जाएगा कि मनु ने कैसे समाज-संगठन को मान्यता दी है और अपनी समाज-व्यवस्था में शामिल विभिन्न वर्गों के लिए क्या-क्या अधिकार तथा कर्तव्य निर्धारित किए हैं।

'मनुस्मृति' में वर्णित समाज-व्यवस्था को समुचित रूप से नहीं आंका गया है। अतः सावधान कर देना जरूरी है, ताकि गलतफहमी की गुंजाइश न रहे। आम तौर पर कहा भी और माना भी जाता है कि मनु ने चातुर्वर्ण्य नामक समाज-व्यवस्था निर्धारित की है। चातुर्वर्ण्य उस समाज-व्यवस्था की तकनीकी नाम है, जिनमें सभी व्यक्तियों को चार अलग-अलग वर्णों में बांटा गया है। अनेक लोगों की यह धारणा है कि मनु द्वारा निर्धारित धर्म में बस इतनी ही व्यवस्था की गई है। यह एक गंभीर भूल है। यदि इसे ठीक न किया जाए तो निश्चय ही इससे उनके बारे में गंभीर गलतफहमी पैदा हो सकती है, जिसे मनु ने वस्तुतः निर्धारित किया है और जो मनु के विचार में आदर्श समाज-व्यवस्था है।

मेरे विचार में यह मनु के बारे में नितांत गलत आकलन है। यह स्वीकार करना होगा कि चातुर्वर्ण्य में शामिल चार वर्णों में समाज के विभाजन को मनु ने प्रमुखता नहीं दी है। एक दृष्टि से मनु ने इस विभाजन को गौण माना है। उसकी दृष्टि में यह केवल उन लोगों के बीच 'आपसी' व्यवस्था है, जिन्हें चातुर्वर्ण्य में शामिल किया गया है। अनेक लोगों की दृष्टि में मुख्य बात यह नहीं है कि कोई व्यक्ति ब्राह्मण है या क्षत्रिय, वैश्य है अथवा शूद्र। वह विभाजन तो उनसे पूर्व भी मौजूद था। मनु ने तो इस विभाजन का विस्तार किया है, उसे सुदृढ़ किया और उसका स्तरीकरण किया। विभाजन का सूत्रपात उसने नहीं किया। लेकिन मनु ने एक नए विभाजन का सूत्रपात अवश्य किया। वह विभाजन उन लोगों के बीच है- (1) जो चातुर्वर्ण्य की परिधि में हैं, और (2) जो चातुर्वर्ण्य की परिधि के बाहर हैं। यह नया समाज-विभाजन मनु की मौलिकता है। हिंदुओं के प्राचीन धर्म में यह उसकी अभिवृद्धि है। मनु की दृष्टि में यह विभाजन बुनियादी है, क्योंकि पहले उसने ही इसे लागू किया और अपने अधिकार के ठप्पे से उसे मान्यता प्रदान की।

अतः इस विषय से संबद्ध मूलपाठों को दो शीर्षकों के अधीन रखना ही होगा-(1) उन लोगों से संबद्ध मूलपाठ जो चातुर्वर्ण्य की परिधि में हैं, और (2) उन लोगों से संबंद्ध मूलपाठ जो चातुर्वर्ण्य की परिधि में नहीं हैं।

I. o tk pkrqoZ.;Z dh ifjf/k esa gSa&mudh mRifÙk vkj de

1. यह ब्रह्मांड तम पुंज के रूप में, अज्ञात, लक्षणहीन, प्रमाणादि तर्कों से परे, अज्ञेय, पूर्ण निमज्जित था, जैसे प्रगाढ़ निद्रा में हो- (मनुस्मृति 1.5)
2. तब स्वयंभू जो अगम थे किंतु आकाशादि महाभूतों को प्रकट करते हुए गोचर रूप में दुर्दम्य सृजनशक्ति सहित हो, अंधकार को दूर करते हुए प्रकट हुए-(वही,1.6)
3. तीनों लोकों की संवृद्धि के लिए ब्रह्मा ने अपने मुख, बाहु, जंघा और चरणों से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की सृष्टि की- (वही, 1.31)
4. महातेजस्वी ब्रह्मा ने संपूर्ण सृष्टि की रक्षा के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के अलग-अलग (कर्म और) व्यवसाय निर्धारित किए-(वही, 1.87)
5. ब्राह्मणों के लिए उन्होंने (वेदों) को पढ़ना और पढ़ाना, अपने तथा दूसरों के हित के लिए यज्ञ करना और कराना, दान लेना और दान देना, कर्म निर्धारित किए-(वही, 1.88)
6. उन्होंने प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेदों का अध्ययन करना, विषयों में आसक्ति न रखना, क्षत्रियों के कर्तव्य बताए हैं- (वही 1.89)
7. उन्होंने पशुपालन, दान देना, यज्ञ करना, (वेद) पढ़ना, व्यापार करना, ऋण देना और खेती करना, वे वैश्यों के कर्तव्य बताए- (मनु, 1.90)
8. ब्रह्मा ने शूद्र के लिए एक ही कर्तव्य निर्धारित किया, अर्थात इन अन्य तीन वर्णों की अत्यंत विनम्रतापूर्वक सेवा करना- (वही, 1.91)
9. विद्यार्थी, प्रशिक्षणार्थी, वेतन देकर नियुक्त सेवक और चौथे अधिकारी व्यक्ति, इन सभी को श्रमिक समझना चाहिए। जो किसी के घर में जन्म प्राप्त करते हैं, वे दास होते हैं- (नारद स्मृति, 5.3)
10. ऋषियों ने कानून के आधार पर पांच वर्ग के सेवक बताए हैं। इनमें चार वर्ग के सेवक वे हैं जिनका ऊपर वर्णन किया गया है। पांचवें वर्ग में दास आते हैं, जिनके 15 प्रकार हैं- (वही, 5.2)
11. जो (अपने स्वामी के) घर में उत्पन्न हुआ है, जो खरीदा गया है, जो उपहार में मिला है, जो विरासत में मिला है, जिसका अकाल के समय भरण-पोषण किया गया है, जो उसके वैध स्वामी द्वारा गिरवी के रूप में रखा गया है- (वही, 5.26)
12. जिसको भारी ऋण चुकाकर मुक्त कराया गया है, जो युद्धबंदी हैं, जो दांव में जीता गया है, जो तपस्वी जीवन त्याग कर यह घोषित करता है, मैं आपका हूं, जो निश्चित अवधि के लिए दास है- (वही, 5.27)
13. जो जीविकोपार्जन के उद्देश्य से दास बनता है, जो दास स्त्री के साथ संबंध होने के कारण दास हो गया और जो स्वयं को बेच देता है। कानून के आधार पर ये 15 प्रकार के दास है- (वही, 5.28)
14. इनमें से प्रथम चार श्रेणी के दास स्वामी की सहमति के बिना मुक्त नहीं किए जा सकते। उनका दासत्व वंशानुगत है - (वही, 5.29)
15. ऋषियों का कथन है कि ये सभी एक जैसे पराधीन होते हैं, परंतु इनका स्तर और इनकी आय इनकी विशिष्ट जाति और व्यवसाय पर निर्भर करती हैं- (वही, 5.4)

II. o tk pkrqoZ.;Z dh ifjf/k ls ckgj gSa&mudh mRifÙk vkj de

1. इस पृथ्वी पर जो भी जातियां उस समुदाय से अलग रखी गई हैं जो मुख, बाहु, जंघा और (ब्राह्मण) के पैरों से जन्मी हैं, वे दस्यु कहलाती हैं, जो चाहे म्लेच्छों (बर्बर जातियों) की भाषा बोलती हों या आर्यों की- (मनु, 10.45)
2. ये जातियां प्रसिद्ध वृक्षों और श्मशान भूमि के निकट या पर्वतों पर और झाड़ियों के पास निवास करें, (कुछ चिन्हों से) जानी जाएं और अपने विशिष्ट व्यवसाय से जीविकोपार्जन करें- (मनु, 10.50)
3. लेकिन चांडालों और श्वपचों के घर गांव के बाहर होंगे, उन्हें अपपात्र बनाया जाना चाहिए और उनकी संपत्ति कुत्ते और गधे होंगे- (वही, 10.51)
4. मृतक के वस्त्र इनके वस्त्र होंगे, वे टूटे-फूटे बर्तनों में भोजन करेंगे, उनके गहने काले लोहे के होंगे और वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर आते-जाते रहेंगे- (वही, 10.52)
5. धर्म का आचरण करने वाला व्यक्ति इन लोगों के साथ व्यवहार न रखे और उनके व्यवहार उनके अपने ही समुदाय में होंगे और विवाह समान व्यक्तियों के साथ ही होंगे- (वही, 10.53)
6. उनका भोजन (आर्य दाता के अतिरिक्त) अन्य के द्वारा टूटे-फूटे बर्तन में दिया गया होगा। रात्रि के समय वे गावों और नगरों के आस-पास नहीं जाएंगे- (वही, 10.54)
7. दिन में वे राजा के द्वारा चिन्हों से अंकित हो जिससे वे अलग-अलग पहचाने जा सकें, अपने-अपने काम के लिए जाएंगे और उन व्यक्तियों के शवों को ले जाएंगे जिनके कोई सगे-संबंधी नहीं हैं, यही शास्त्र-सम्मत, मर्यादा है- (वही, 10.55)
8. वे राजा का आदेश होने पर अपराधियों का वध कानून में निहित विधि के अनुसार हमेशा करेंगे और वे अपने लिए (ऐसे) अपराधियों के वस्त्र, शैया और आभूषण प्राप्त करेंगे- (वही, 10.56)
9. जो भी व्यक्ति निम्नतम जातियों की किसी स्त्री के साथ संबंध रखता है, उसका वध कर दिया जाएगा- (विष्णु 5.43)
10. अगर कोई व्यक्ति जिसको (चांडाल या किसी अन्य निम्न जाति का होने के कारण) स्पर्श नहीं किया जाना चाहिए, जान-बूझकर अपने स्पर्श से ऐसे व्यक्ति को अपवित्र करता है जो द्विज जाति का होने के कारण (केवल द्विज व्यक्ति द्वारा ही) छुआ जा सकता है, तो उसका वध कर दिया जाएगा- (वही, 5.104)

मैं बता चुका हूं कि मनु की नजरों में चातुर्वर्ण्य की परिधि के भीतर वालों और उसकी परिधि से बाहर वालों का यह विभाजन वास्तविक विभाजन था। यह इतना वास्तविक था कि मनु ने चातुर्वर्ण्य की परिधि से बाहर वालों को 'बाह्य' की संज्ञा दी है, जिसका अर्थ है कि वे लोग जो चातुर्वर्ण्य की परिधि में शामिल नहीं किए गए हैं या उससे बाहर रखे गए हैं। यह एक ऐसा विभाजन था, जिसे उसने अत्यधिक महत्व दिया। उसके दूरगामी परिणाम थे। इस विभाजन का उद्देश्य यह था कि हैसियत और नागरिकता का अंतर रहे। यह सच है कि जो चातुर्वर्ण्य की परिधि में हैं, उन सबका स्तर भी समान नहीं है। चातुर्वर्ण्य के भीतर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा गुलाम हैं और उन सबका दर्जा समान नहीं है। फिर भी वे चातुर्वर्ण्य के भीतर हैं। जो चातुर्वर्ण्य के भीतर हैं, मनु के कानून की नजर में उनका दर्जा है और लोगों की नजर में उनका सम्मान है। जो उसके भीतर नहीं हैं, लोगों की दृष्टि में उनका कोई सम्मान नहीं है। नागरिकता का भी अंतर है। जो चातुर्वर्ण्य के भीतर हैं, वे अधिकारों का उपयोग कर सकते हैं और उन्हें लागू करवा सकते हैं। जो उसके भीतर नहीं हैं, उनके पास न अधिकार हैं और न ही उन्हें लागू करवाने का उपाय।

चातुर्वर्ण्य के भीतर वालों और उसके बाहर वालों के बीच का यह अंतर उस अंतर से मिलता-जुलता है, जो प्राचीन रोम के कानून के अनुसार नागरिकों के बीच, यानी नागरिकों और गैर-नागरिकों के बीच था। रोम का प्राचीन कानून मूलतः व्यक्तिपरक था, राज्य-क्षेत्रपरक नहीं। व्यक्ति को उसकी संस्थाओं और

उनकी सुरक्षा का लाभ इसलिए नहीं मिलता था कि वह रोम के राज्य–क्षेत्र के भीतर निवास करता था, बल्कि इसलिए मिलता था कि वह एक ऐसा नागरिक था कि उसी के द्वारा तथा उसी के लिए रोम का कानून बनाया गया था। प्राचीन अंतर्राष्ट्रीय कानून यह था कि किसी विदेशी राज्य की सीमा में निवास करने वाला व्यक्ति उस राज्य तथा उसके नागरिकों की दया पर निर्भर करता था। उसके साथ गुलाम जैसा व्यवहार किया जा सकता था। कोई भी प्रथम आगंतुक उसका सर्वस्व हरण कर सकता था, क्योंकि वह कानून के घेरे से बाहर था। दीवानी कानून के अधीन रोम के नागरिक के निराले व्यक्तिगत अधिकारों का सार केवल ती गूढ़ शब्दों में उडेल दिया गया है। वे हैं– कोनुबियम, कोमर्कियम और एक्टियो। कोनुबियम विवाह करने की क्षमता थी, जिससे समोत्रता और सपिंडता का उद्‌भव होता है। इन्हीं पर बिना वसीयत उत्तराधिकार, संरक्षकता आदि की नींव पड़ी। कोमर्कियम संपत्ति के अर्जन अथवा उसके हस्तांतरण की क्षमता थी। एक्टियो वह क्षमता थी, जिसके अनुसार अदालत का द्वार खटखटाया जा सकता है। उसके अधीन क्षतिपूर्ति और सुरक्षा या ऐसे अधिकार के प्रवर्द्धन के लिए दावा किया जा सकता है, जो कोनुबियम अथवा कोमर्कियम ने दिया हो या उसमें शामिल हो या जिसे सीधे कानून ने दिया हो। इन तीनों क्षमताओं का लाभ केवल रोम के नागरिक उठा सकते थे। गैर–नागरिक को इनमें से कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं था।

III

चातुर्वर्ण्य के भीतर वालों तथा उसके बाहर वालों के बीच का यह विभाजन यद्यपि वास्तविक और बुनियादी है, पर निश्चय ही यह परिभाषा पुरानी है। चातुर्वर्ण्य व्यवस्था अब कानून के रूप में प्रचलित नहीं है। अतः चातुर्वर्ण्य के भीतर और उसके बाहर वाली जातियों की बात कहना कुछ सिद्धांत बघारने जैसी बात होगी। प्रश्न उठेगा कि इन प्राचीन वर्णों के आधुनिक प्रतिरूप क्या हैं? प्रश्न पूर्णतः इसलिए उचित है कि मुझे विशेषतः यह स्पष्ट करना है कि किसी प्रकार मनु का प्राचीन कानून हिंदुओं की वर्तमान अराजकता के लिए जिम्मेदार है। भले ही मैं इस परिभाषा को पुरानी कह रहा हूं, लेकिन दो बातें दर्शा देंगी कि मेरी यह धारणा सही है। एक तो यह कि मनु के प्राचीन सामाजिक विभाजनों के प्रतिरूपों का अभाव आधुनिक–काल में नहीं हैं। उन प्राचीन विभाजनों के आधुनिक प्रतिरूप हैं, हिंदू और अस्पृश्य। चातुर्वर्ण्य में मनु ने जिन लोगों को शामिल किया, उनका प्रतिरूप हिंदू नामक आधुनिक मिश्रित वर्ग हैं। जिन्हें मनु ने बाह्य (चातुर्वर्ण्य से बाहर) कहा, उनका प्रतिरूप भारत के वर्तमान अस्पृश्य हैं। चातुर्वर्ण्य में शामिल चार वर्णो–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के बीच की विभाजन रेखा आधुनिक–काल में कुछ धुंधली पड़ गई है और वे कुछ हद तक आपस में घुलने–मिलने लगे हैं। लेकिन चातुर्वर्ण्य के भीतर वालों तथा उसके बाहर वालों के बीच जो विभाजन रेखा मनु ने खींची थी, वह आज भी स्पष्ट है और उसे न तो मिटाने और न ही उसका उल्लंघन करने की इजाजत है। यही वह रेखा है, जो आज हिंदुओं को अस्पृश्यों से अलग करती है। यह एक बात तो स्पष्ट है कि प्राचीन विभाजन छनकर आधुनिक–काल में आ गए हैं। परिवर्तन केवल नामों का है।

दूसरा प्रश्न है कि मनु ने 'बाह्यों' के लिए जिस कानून की व्यवस्था की है, क्या उसका कोई प्रतिरूप हिंदुओं और अस्पृश्यों के वर्तमान सामाजिक संबंधों में मौजूद है? जिन्हें इस बारे में संशय है, उनसे मेरा निवेदन है कि वे निम्न मामलों पर विचार करेंगे। घटना मद्रास प्रसिडेंसी के रामनाड जिले की है।

दिसंबर 1930 में रामनाड के कल्लारों ने आठ प्रतिबंधों का फतवा दिया। उनकी अवहेलना के कारण कल्लारों ने अस्पृश्यों के खिलाफ हिंसा का प्रयोग किया। अस्पृश्यों की झोंपड़ियों में आग लगा दी गई और उनके अन्न भंडारों तथा संपत्ति को नष्ट कर दिया गया। उनके मवेशी लूट लिए गए। ये आठ प्रतिबंध इस प्रकार थे :

1. आदि–द्रविड़ों की स्त्रियां सोने व चांदी के जेवर नहीं पहनेगी,
2. उनके मर्द अपने घुटनों से नीचे और कूल्हों से ऊंचे वस्त्र धारण नहीं करेंगे,
3. उनके मर्द कोट, कमीज या बनियान नहीं पहनेंगे
4. कोई भी आदि–द्रविड़ अपने बाल नहीं कटवाएगा,
5. आदि–द्रविड़ अपने घरों में केवल मिट्‌टी के बर्तन ही इस्तेमाल करेंगे,
6. उनकी स्त्रियां अपने शरीर के ऊपरी भाग को वस्त्रों या राबुकाई या थावनी से नहीं ढकेंगी,
7. उनकी स्त्रियां पुष्पों या केसर के उबट का इस्तेमाल नहीं करेंगी, और
8. मर्द लोग न तो धूप और वर्षा से बचने के लिए छाते का इस्तेमाल करेंगे और न ही चप्पल पहनेंगे।

जून 1931 में जब विचारधीन 'बाह्य' जातियों ने इन आठ प्रतिबंधों का संतोषजनक ढंग से पालन नहीं किया, तो कल्लार पुनः एकत्र हुए और उन्होंने ग्यारह प्रतिबंधों की रचना की। इन प्रतिबंधों ने तो मूल आठ प्रतिबंधों को भी मात दे दी। इन प्रतिबंधों को लागू करने के प्रयास में हिंसा और भी भड़की। ये ग्यारह प्रतिबंध थे :

1. आदि–द्रविड़ और देवेंद्रकुल वेल्लार अपने घुटनों से नीचे वस्त्र धारण नहीं करेंगे,
2. उपर्युक्त दलित वर्गों के पुरूष और स्त्रियां सोने के जेवर नहीं पहनेंगे,
3. स्त्रियां केवल मिट्‌टी के बर्तनों में पानी ले जाएंगी, तांबे या पीतल के बर्तनों में नहीं। पानी वाले बर्तनों को ढोने के लिए वे केवल पुआल का इस्तेमाल करेंगी। इस काम के लिए वे कपड़े का इस्तेमाल नहीं करेंगी।
4. उनके बच्चे नहीं पढ़ेंगे और न ही वे साक्षर होंगे या शिक्षा प्राप्त करेंगे,
5. बच्चे केवल मिरासदारों के मवेशी चराएंगे,
6. उनके पुरूष और स्त्रियां अपनी–अपनी पन्नाइयों में मिरासदारों के गुलामों के रूप में काम करेंगे,
7. वे मिरासदारों से भूमि वरम या पट्‌टे पर लेकर खेती नहीं करेंगे,
8. उन्हें गांव के मिरासदारों को अपनी जमीन बहुत ही सस्ते दामों पर बेच देनी पड़ेगी और यदि वे ऐसा नहीं करेंगे तो उन्हें भूमि की सिंचाई के लिए पानी नहीं दिया जाएगा। यदि वर्षा के जल से कोई चीज उगाई भी जाएगी तो कटाई के योग्य होने पर फसलों को लूट लिया जाएगा,
9. उन्हें सुबह सात बजे से शाम के छह बजे तक मिरासदारों के अधीन कुली के रूप में काम करना ही होगा और उसके लिए मर्दों को चार आने प्रतिदिन और औरतों को दो आने प्रतिदिन मजूरी दी जाएगी,
10. उक्त जातियां अपने विवाह आदि के अवसर पर भारतीय संगीत (मेलम आदि) का इस्तेमाल नहीं करेंगी, और
11. विवाह में थाली सूत्र बांधने से पूर्व घुड़चढ़ी की अपनी रस्म उन्हें बंद करनी ही होगी। उन्हें शादी के जुलूस में पालकी के रूप में अपने घरों के दरवाजों को ही इस्तेमाल करना होगा। किसी भी प्रयोजन के लिए वे वाहन का इस्तेमाल नहीं कर सकेंगे।

रामनाड के हिंदुओं द्वारा अस्पृश्यों पर लागू किए गए इन प्रतिबंधो की तुलना उन प्रतिबंधों से कीजिए, जिन्हें इस अध्याय में 'मनुस्मृति' के मूलपाठों से उद्धत किया जा चुका है।

'बाह्य' के लिए मनु की व्यवस्थाओं और 1931 में कल्लारों द्वारा अस्पृश्यों पर थोपी गई शर्तों में क्या कोई अंतर है? इस प्रमाण के बाद कोई संदेह नहीं रह जाता कि अहिंदू को जो अधर्म प्रतीत होता है, वही कर्म हिंदू कर रहा है और उसके बावजूद वह अस्पृश्य से कह रहा है कि वह मनु द्वारा प्रतिपादित धर्म का पालन करे।

एक अन्य उदाहरण मध्य भारत के बलाइयों का है। बलाई लोग अस्पृश्य जाति के हैं। 1927 के आसपास बलाइयों ने अपनी जाति के सामाजिक सुधार का अभियान चलाया गया था और उसके बारे में नियम बनाए थे। नियमों में कहा गया था कि उनकी जाति के लोग कतिपय प्रकार के घटिया काम न करें और निश्चित प्रकार के वस्त्र धारण करें। इन नियमों से सवर्ण हिंदुओं के हितों पर कोई कुप्रभाव नहीं पड़ता था। लेकिन सवर्ण हिंदुओं ने बलाइयों के इस प्रयास को अपना अपमान समझा कि वे प्रथा द्वारा निर्धारित दर्जे से ऊपर उठना चाहते हैं। सवर्ण हिंदुओं ने इसे बलाइयों की गुस्ताखी माना और उन पर घातक प्रहार करने का निश्चय किया। निम्न घटना की रिपोर्ट पत्रों में छपी थी। उसमें बताया गया है कि विद्रोही बलाइयों के साथ सवर्ण हिंदुओं ने कैसा व्यवहार किया।

हिंदुओं का अत्याचार

बलाइयों के लिए नियम

जीवन शैली का निर्धारण

गत मई (1927) में सवर्ण हिंदुओं, अर्थात कलोटाओं, राजपूतों और ब्राह्मणों ने, जिनमें कनारिया, बिछौली, हाफसी, मर्दाना गांवों के तथा इंदौर जिले के कोई 15 अन्य गांवों के पटेल और पटवारी शामिल थे, अपने–अपने गांवों के बलाइयों को सूचित किया कि यदि वे उनके बीच रहना चाहते हैं तो उन्हें निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगाः

1. बलाई लोग सुनहरी जरी की किनारी लगी पगड़ियां नहीं पहनेंगे,
2. वे रंगीन या बढ़िया किनारी वाली धोतियां नहीं पहनेंगे,
3. उन्हें किसी हिंदू के निधन का संदेश मृत व्यक्ति के रिश्तेदारों तक पहुंचना ही होगा, भले ही वे रिश्तेदार कितनी भी दूर क्यों न रहते हों,
4. हिंदुओं के सभी विवाहों में बरात के आगे और विवाह के दौरान बलाइयों को गाने–बजाने का काम करना होगा,
5. बलाई स्त्रियां चांदी और सोने के जेवर नहीं पहनेंगी, वे बढ़िया लंहगा और कुर्ता नहीं पहनेंगी
6. बलाई स्त्रियों को हिंदू घरों में दाई वगैरह का काम करना ही होगा,
7. बलाइयों को बिना किसी उजरत के सेवा करनी होगी और उसे ही स्वीकार करना होगा जो हिंदू अपनी खुशी से दे दें, और
8. यदि बलाई इन शर्तों को स्वीकार नहीं करेंगे तो उन्हें गांव छोड़ना पड़ेगा।

cykb;k u fu;e dk ikyu ugh fd;k

बलाइयों ने इन नियमों का पालन करने से इंकार कर दिया और हिंदुओं ने उनके खिलाफ कार्यवाही की। बलाइयों को गांव के कुओं से पानी नहीं लेने दिया गया। उन्हें अपने पशु नहीं चराने दिए गए। बलाइयों को हिंदू की भूमि से होकर गुजरने नहीं दिया गया। यदि किसी बलाई के खेत के चारों ओर हिंदुओं के खेत थे तो बलाई अपने खेत पर नहीं जा सकता था। हिंदू अपने मवेशियों को हांक कर बलाइयों के खेतों में चरने के लिए भी छोड़ देते थे। बलाइयों ने इन अत्याचारों के खिलाफ 'दरबार' के सामने अर्जियां दीं। पर चूंकि समय पर उन्हें कोई राहत नहीं मिली और अत्याचार होता रहा, अतः सैंकड़ो बलाइयों को अपनी पत्नियों और बच्चों समेत विवश होकर उन घरों को छोड़ना पड़ा, जहां पीढ़ियों से उनके पूर्वज रह रहे थे। उन्हें पड़ोसी देशी राज्यों, अर्थात धार, देवास, भोपाल, ग्वालियर तथा अन्य राज्यों के गांवों में जाना पड़ा।

tcju&djkj

केवल कुछ दिन पूर्व इंदौर नगर से कोई सात मील उत्तर में स्थित रेवती गांव के हिंदुओं ने बलाइयों को आदेश दिया कि वे अन्य गांवों के हिंदुओं द्वारा बलाइयों के खिलाफ बनाए गए नियमों के अनुसार पक्के कागज पर लिखे करार पर दस्तखत करें। बलाइयों ने आदेश का पालन नहीं किया। कहा जाता है कि हिंदुओं ने उनमें से कुछ की पिटाई की। उन्होंने एक बलाई को खंभे से बांध दिया और उससे कहा कि यदि वह करार दर दस्तखत करने के लिए राजी हो जाए तो

उसे छोड़ दिया जाएगा। उसने करार पर दस्तखत कर दिए और उसे छोड़ दिया गया। इस गांव के कुछ बलाई भागकर अगले दिन, यानी 20 दिसंबर को प्रधानमंत्री के पास पहुंचे और उनसे शिकायत की कि रेवती गांव के हिंदुओं ने उनके साथ कैसा दुर्व्यवहार किया। उन्हें जिले के सुबहा के पास भेज दिया गया। इस अधिकारी ने पुलिस की मदद से गांव में जांच की और सिफारिश की कि हिंदुओं के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 342 और 147 के अधीन और बलाइयों के खिलाफ धारा 147 के अधीन कार्रवाई की जाए।

cykbZ xkoksa dk NkM+dj py x,
tkrh; vR;kpkj
dkuwu dh tkudkjh u gksuk ,d vfHko/kk

बलाइयों के प्रति कतिपय गांवों के हिंदू निवासियों के व्यवहार में कोई सुधार नहीं हुआ है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, सवर्ण हिंदुओं ने बलाइयों के साथ दुर्व्यवहार किया है। इंदौर जिले में अकेले दोपालपुर परगने से ही बलाइयों को काफी संख्या में अपने घर छोड़ने पड़े और पड़ोस के राज्यों में शरण लेनी पड़ी। विवश होकर जिन गांवों को बलाई छोड़कर चले गए, वे हैं–बदौली, अहिरखराल, पिपलोदा, मोरखेर, पमालपुर, करोदा, छतवाड़ा, नेवरी, पान, सनौड़ा, अज्नोटी, खेतड़ी और सनावडा। पमालपुर गांव में तो एक भी बलाई पुरूष, स्त्री या बच्चा नहीं रहा है। कहा जाता है कि उक्त गांवों में से एक निवासी नंदा बलाई को गांव के हिंदुओं ने बुरी तरह मारा–पीटा। समाचार है कि एक गांव में तो हिंदुओं ने बलाइयों के सभी घरों को जलाकर खाक कर दिया, लेकिन अपराधियों का अभी तक कोई सुराग नहीं मिला है।

बलाई भोले–भाले अनपढ़ ग्रामीण होते हैं। उन्हे कानूनी कारवाई की कोई जानकारी नहीं होती। वे तो सोचते हैं कि सरकार के पास अर्जी भेज दो, बस उनका काम बन जाएगा। शिकायत का आखिर तक कैसे पीछा किया जाए, इसका उन्हें न तो ज्ञान है और न ही उनके पास इसके लिए कोई साधन हैं। कहा जाता है कि कुछ मामलों में चूंकि उन्होंने अपने आरोपों के समर्थन में गवाह पेश नहीं किए, अतः मजिस्ट्रेट के पास उनकी शिकायत को खारिज करने के अलावा और कोई चारा नहीं था।

धर्म और अधर्म के इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो क्या इस बारे में कोई संदेह रह जाता है कि अस्पृश्यों के विद्रोह के दमन के लिए हिंदू जिस अराजकता और बर्बरता का सहारा लेते हैं, उसके पीछे यह प्रेरणा है कि वे तो अपने पर हुए घोर अत्याचार को रोकने का पुण्य कार्य कर रहे हैं।

IV

यह प्रश्न नितांत प्रासंगिक है कि आज मनु के इस धर्म का कितना अंश बाकी रह गया है? यह स्वीकार करना ही होगा कि कानून के रूप में, उन नियमों के रूप में जो किसी न्यायालय के लिए विवादों के निर्णय के लिए बाध्यकारी होते हैं, मनु के धर्म की कोई प्रवर्तन–शक्ति नहीं रही है। अपवाद विवाह, उत्तराधिकार आदि जैसे मामले हैं, जिनका प्रभाव केवल व्यक्ति पर पड़ता है। सामाजिक आचरण तथा नागरिक अधिकारों को नियमित करने वाले कानून के रूप में उसे लागू नहीं किया जा सकता। लेकिन भले ही कानून के रूप में उसकी मान्यता नहीं रही है, प्रथा के रूप में वह अब भी विद्यमान है।

कानून के मुकाबले प्रथा भी कोई नगण्य चीज नहीं है। यह सच है कि कानून को राज्य अपने पुलिस बल के माध्यम से लागू करता है और प्रथा यदि वैध नहीं है, तो उसे राज्य लागू नहीं कर सकता। लेकिन व्यवहार में इस अंतर का कोई महत्व नहीं है। राज्य कितने पुरअसर ढंग से कानून को लागू करता है, उससे भी कहीं पुरअसर ढंग से प्रथा को जनसमूह लागू करता है। इसका कारण यह है कि संगठित जनसमूह की बाध्यकारी शक्ति राज्य की बाध्यकारी शक्ति से कहीं अधिक प्रबल होती है।

मनु का धर्म तकनीकी दृष्टि से कानून नहीं रहा है, फिर भी इस कारण उसकी प्रवर्तनीयता पर कोई आंच नहीं आई है। लेकिन ऐसी परिस्थितियां हैं, जो मनु के इस धर्म के प्रभाव को पूरा करने में सक्षम हैं।

इन परिस्थितियों में सर्वोपरि है, प्रथा का बल। समाज के हर समूह की न केवल कार्य करने की, अपितु अनुभव और विश्वास करने की, आकलन करने की तथा स्वीकार और अस्वीकार करने की कुछ (आदतें) होती हैं। वे समूह की मानसिक वृत्तियों का अंग होती हैं। हर नवागंतुक, चाहे वह समूह में जन्म से या अंगीकरण से शामिल होता है, इस सामाजिक माध्यम की दीक्षा प्राप्त करता है। हर समूह के भीतर यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है कि समूह की इन मानसिक वृत्तियों को समूह के हर नए सदस्य के मानस पर गोदा जाए। उसके द्वारा समूह व्यक्ति का समाजीकरण करता है या नवागंतुक की मानसिक तथा व्यावहारिक वृत्तियों का निरूपण करता है। दह समूह पर आश्रित हो जाता है। अतः वह समूह की मानसिक वृत्तियों को उसी प्रकार अस्वीकार नहीं कर सकता, जिस प्रकार वह अपने भौतिक पर्यावरण की स्थिति और विनियमन को अस्वीकार नहीं कर सकता। वस्तुतः वह समूह पर इतना आश्रित हो जाता है कि तुरंत पंक्ति में खड़ा हो जाता है और समूह में प्रचलित श्रद्धा और व्यवहार के तौर–तरीकों को स्वीकार कर लेता है। वे उसके अपने मानस की स्थाई वृत्ति बन जाते हैं।

समूह व्यक्ति का किस प्रकार समाजीकरण करता है, इसका सविस्तार वर्णन ग्रोटे ने किया है। वह कहते हैं :

क्या सत्य अथवा असत्य है, संभव अथवा असंभव है, उचित या अनुचित है, पवित्र अथवा अपवित्र है, सम्माननीय या अवमाननीय है, श्रद्धेय अथवा अश्रद्धेय है, शुद्ध अथवा अशुद्ध है, सुंदर अथवा असुंदर है, श्लील अथवा अश्लील है, बाध्यकारी या अबाध्यकारी है, इसके प्रति विश्वास संबंधी आस्थाओं और प्रवृत्तियों का तथा नैतिक, धार्मिक, सौंदर्यात्मक और सामाजिक श्रद्धा का समाज में हर व्यक्ति के दर्जे तथा संबंधों के प्रति और मनोरंजन के मान्य तौर–तरीकों के प्रति सम्मान का जो यह समूचा संगम है, वह एक सुस्थापित तथ्य तथा परिस्थिति है। इसका वास्तविक उद्गम अधिकांशतः अज्ञात है, लेकिन समूह का हर नया सदस्य इस पर जन्म और व्यवहार से आश्रित है। ... वह हर व्यक्ति की प्रकृति का अंग बन जाता है, उसके मानस की स्थाई वृत्ति अथवा मानंसिक प्रवृत्तियों का निर्धारित समूह बन जाता है। उसी के अनुसार अनुभव विशेष का आकलन और व्यक्ति विशेष का मूल्यांकन वह करता है। .... समुदाय उस व्यक्ति से घृणा, द्वेष और उसका तिरस्कार करता है, जो अपने समाज के धर्ममत से असहमति प्रकट करता है।... उनकी घृणा भी अलग–अलग रूपों में उजागर होती है... उसकी पराकाष्ठा, सहिष्णुता, सद्भाव और सम्मान का वह अपवंचन है, जो व्यक्ति के जीवन को दूभर बना देता है।

लेकिन वह क्या है, जिसके फलस्वरूप यह स्थिति आती है? ग्रोटे ने स्वयं इस प्रश्न का उत्तर दिया है। उनका उत्तर है कि इसका कारण है, 'नोमोस (नियम तथा प्रथा) सबका राजा (इसे हेरोडोटस ने पिंडार से उद्धृत किया है), व्यक्ति के मानस पर राज करने वाली यह लौकिक और अलौकिक पूर्ण प्रभुत्व वाली सत्ता है जो स्थानीय सांचे के अनुसार बुद्धि तथा भावनाओं को ढालती है और सहज एवं स्वाभाविक प्रवृत्तियों का मुखौदा धारण करके राज करती है।

इस सबका निष्कर्ष यह है कि जब किसी समुदाय के भीतर कर्म, अनुभव आस्था, आकलन, स्वीकृति अथवा अस्वीकृति के तौर–तरीके छन–छनकर प्रथा और परंपरा का रूप धारण कर लेते हैं तो उन्हें लागू करने लिए कानून की मान्यता की आवश्यकता नहीं रह जाती। समूह सदैव सामूहिक कार्यवाही द्वारा पूर्णाधिकारों का अंबार खड़ा कर सकता है और देख सकता है कि उनका उल्लंघन न होने पाए।

मनु की धर्म–व्यवस्था पर भी यही बात लागू होती है। सदी–दर–सदी मनु के धर्म में यह विनियमन शक्ति चली आ रही है, अतः वह हिंदुओं की प्रथाओं और परंपराओं का अभिन्न और अनिवार्य अंग बन गया है। वह हिंदुओं के रक्त में समा गया है और उसने उनके जीवन के रक्त को विशिष्टता प्रदान की है। कानून के रूप में उसने हिंदुओं के कर्मों पर नियंत्रण किया। भले ही वह अब प्रथा मात्र है, पर आज भी उसका कम महत्व नहीं है। वह पीढ़ी–दर–पीढ़ी उसके चरित्र को ढालता है और उसके दृष्टिकोण की दिशा को निर्धारित करता है।

एक और बात है, जो मनु के धर्म को समाप्त नहीं होने देती। वह यह है कि कानून उसके प्रचार–प्रसार को नहीं रोकता। यह एक ऐसी परिस्थिति है, जो संभवतः अनेक लोगों के जहन में नहीं उतरने पाती। यह कहा जाता है कि ब्रिटिश राज की एक देन यह है कि 'मनुस्मृति' अब इस देश का कानून नहीं रह गई है। इसमें संदेह नहीं कि यह एक महान देन है कि अदालतों से अब यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वे 'मनुस्मृति' के उपबंधों को कानून के नियमों के रूप में लागू करें। इस बात को तो वे भुक्तभोगी ही अच्छी तरह समझ सकते हैं, जो इस 'घिनौनी' चक्की के पाटों के नीचे पिसे हैं। यह अस्पृश्यों के लिए उतना ही महान वरदान है, जितना कि यूरोपवासियों के लिए धर्म–सुधार था। लेकिन साथ ही यह भी याद रखना होगा कि धर्म–सुधार का स्थाई लाभ न होता, यदि उसके बाद 'प्रोटेस्टैंट क्रांति' न होती। मेरे विचार में प्रोटेस्टैंट क्रांति की विशिष्टताएं इस प्रकार हैं : (1) राज्य सर्वोपरि है और चर्च राज्य के अधीन है, (2) जिस सिद्धांत का प्रचार करना हो, उसका अनुमोदन राज्य से कराया जाए, और (3) पादरी राज्य के ही सेवक होंगे और वे न केवल उन अपराधों के लिए दंड के भागी होंगे जो वे देश के सामान्य कानून के विरूद्ध करेंगे, बल्कि उनके लिए भी जिनमें नैतिक दुराचार शामिल होगा। वे दंड के भागी होंगे, यदि वे राज्य के अनुमोदन के बिना सिद्धांतों का प्रचार–प्रसार करेंगे। व्यक्तिगत रूप से मैं 'राज्य द्वारा मान्य' चर्च का पक्षधर हूं। यह एक ऐसी व्यवस्था है, जिसके अधीन यह सुरक्षा और संरक्षण है कि धर्म के सिद्धांतों के नाम पर कोई भी व्यक्ति अनुचित और घिनौने सिद्धातों का प्रचार–प्रसार नहीं कर सकता। मैं जानता हूं कि ऐसे लोग हैं, जो राज्य द्वारा मान्य चर्च की व्यवस्था का विरोध करते हैं। लेकिन चाहे यह व्यवस्था अच्छी हो या बुरी, तथ्य यह है कि मनु द्वारा निर्धारित धर्म के प्रचार–प्रसार पर कोई कानूनी रोक नहीं है। न्यायालय उसे कानून नही मानते। लेकिन कानून उसे कानून के प्रतिकूल भी तो नहीं मानता। वस्तुतः हर गांव में रोज ही यही होता है। जब पंडित इस धर्म का उपदेश माता–पिता को और हो सकती है? उसके पाठों की जड़ों को रोज सींचा जाता है। और हर–एक को यह याद कराया जाता है कि अस्पृश्यता उनके धर्म का अंग है।

मनु के धर्म के इस दैनिक प्रचार–प्रसार की विषैली छूत, पुरूष हो या स्त्री, बच्चा हो या बूढ़ा, सबके मानस में घुस गई है। यह न्यायाधीशों के मानस में भी घुस गई। कलकत्ता का एक समाचार है। नौबिन नामक एक डोम (अस्पृश्य) पर बकरी की चोरी करने के इल्जाम में मुकदमा चलाया गया। उकसा दोष सिद्ध नहीं हुआ। उसने वादी के खिलाफ मानहानि के लिए फरियाद की। मजिस्ट्रेट ने उसकी फरियाद को इस आधार पर खारिज कर दिया कि वह तो निम्न जाति का है, उसका कोई मान है ही नहीं। इस पर उच्च न्यायालय को हस्तक्षेप करना पड़ा। उसने मजिस्ट्रेट को निर्देश दिया कि उसका दृष्टिकोण गलत है और दंड प्रक्रिया के अधीन सभी व्यक्ति समान हैं। लेकिन प्रश्न यह है कि मजिस्ट्रेट को कहां से यह भान हुआ कि अस्पृश्य का कोई मान नहीं होता? निश्चय ही 'मनुस्मृति' के उपदेश से।

मनु का धर्म तो कभी पुराना या बासी हुआ ही नहीं। वह तो इतना ताजा है कि जैसे उसे आज ही बनाया गया हो। लक्षण तो ऐसे हैं, जैसे भविष्य में भी उसका वर्चस्व बना रहेगा। प्रश्न केवल इतना है कि वह वर्चस्व अस्थाई होगा या चिरंस्थाई?

lkHkkj
ckcklkgc Mk- vkEcsMdj
lEi.kk ok³e; [kM&10
i©E l[;k 181 l 197 rd
MkW©E ch- vkj- vEcsMdj

आत्मा में विश्वास अ–धर्म है

1. भगवान् बुद्ध ने कहा कि जिस धर्म का सारा दारोमदार 'आत्मा' पर है वह कल्पनाश्रित धर्म है।
2. आजतक किसी ने भी न तो 'आत्मा' को देखा है और न उससे बातचीत की है।
3. आत्मा अज्ञात है, अदृश्य है।
4. जो चीज वास्तव में है वह मन या चित्त, 'आत्मा' नहीं। मन 'आत्मा' से भिन्न है।
5. तथागत ने कहा–'आत्मा में विश्वास करना अनुपयोगी है।'
6. इसलिये जो धर्म 'आत्मा' पर आश्रित है, वह अपनाने योग्य नहीं है।
7. ऐसा धर्म केवल मिथ्या–विश्वास का जनक है।
8. बुद्ध ने इस बात को यों ही नहीं छोड़ दिया है। तथागत ने इसकी अच्छी तरह चर्चा की है।
9. 'आत्मा' में विश्वास भी वैसी ही सामान्य बात है जैसी 'परमात्मा' में विश्वास है।
10. 'आत्मा' में विश्वास रखना भी 'ब्राह्मणी' धर्म का एक अंग था।
11. 'ब्राह्मणी' धर्म में 'रूह' को 'आत्मा' या 'आत्मन्' कहते हैं।
12. ब्राह्मणी धर्म में 'आत्मा' उस तत्व–विशेष को कहा गया है जो शरीर से पृथक् किन्तु शरीर के ही भीतर, जन्म के समय से लेकर लगातार बना रहता है।
13. 'आत्मा' के विश्वास के साथ तत्सम्बन्धी दूसरे विश्वास भी जुड़े हुए हैं।
14. शरीर के साथ 'आत्मा' का मरण नहीं होता। यह दूसरे जन्म के समय दूसरे शरीर के साथ जन्म ग्रहण करती है।
15. शरीर 'आत्मा' का एक और अतिरिक्त–परिधान है।
16. क्या भगवान बुद्ध 'आत्मा' में विश्वास रखते थे? नहीं, एकदम नहीं। 'आत्मा' के सम्बन्ध में उनका मत 'अनात्म–वाद' कहलाता है।
17. यदि एक अशरीरी 'आत्मा' को स्वीकार कर लिया जाय तो उसके सम्बन्ध में बहुत से प्रश्न पैदा होते हैं। 'आत्मा' क्या है? 'आत्मा' का आगमन कहा से हुआ? शरीर के मरने पर इसका क्या होता है? यह कहा जाता है? शरीर के न रहने पर यह 'परलोक' में कैसे रहता है? वहां यह कब तक रहता है? जो लोग 'आत्मा' के अस्तित्व के सिद्धान्त के समर्थक थे, भगवान् बुद्ध ने उनसे ऐसे प्रश्नों का उत्तर चाहा था।
18. पहले तो उन्होंने अपने जिरह करने के सामान्य क्रम से यह दिखाना चाहा कि 'आत्मा' का विचार कितना गोल–मटोल है।
19. जो 'आत्मा' के अस्तित्व में विश्वास रखते थे, उनसे भगवान् बुद्ध ने जानना चाहा कि 'आत्मा' का आकार कितना बड़ा या छोटा है? 'आत्मा' की शक्ल कैसी है?
20. आनन्द स्थविर को उन्होंने कहा था– ''आनन्द! आत्मा के सम्बन्ध में लोगों के अनगिनत मत हैं। कोई कहते हैं– 'मेरा 'आत्मा' रूपी है और बड़ा ही सूक्ष्म है।' कुछ दूसरों का कहना है कि आत्मा की शक्ल है, यह अनन्त है और यह सूक्ष्म है। कुछ दूसरे हैं जिनका कहना है कि यह निराकार है और अनन्त है।
21. ''आनन्द! 'आत्मा' के बारे में नाना तरह के मत है।''
22. ''जो लोग 'आत्मा' के अस्तित्व में विश्वास करते हैं, उनकी आत्मा की कल्पना क्या है?'' यह भी भगवान बुद्ध का एक प्रश्न था। कोई कहते हैं– ''हमारी आत्मा (सुख–दुःख) अनुभव किया है।'' दूसरे कहते हैं ''नहीं आत्मा अनुभव किया नहीं, आत्मा अनुभव–किया है।''या फिर कोई कोई कहते हैं, ''मेरी आत्मा अनुभव–किया नहीं है, न यह अनुभव–किया है, बल्कि मेरी आत्मा अनुभव करता है, मेरी आत्मा का गुण है अनुभव करना।'' आत्मा के बारे में इस तरह की नाना कल्पनाएँ हैं।
23. जो लोग 'आत्मा' में विश्वास रखते थे, उनसे भगवान बुद्ध ने यह भी पूछा है कि मरणान्तर 'आत्मा की क्या हालत होती है?
24. तथागत यह भी प्रश्न पूछा है कि क्या मरने के बाद 'आत्मा' देखी जा सकती हैं?
25. उन्हें अनगिनत गोल–मटोल जवाब मिले।
26. क्या शरीर का नाश हो जाने पर 'आत्मा' अपने आकार–प्रकार को बनाये रखती है? उन्होंने देखा कि इस एक प्रश्न के आठ काल्पनिक उत्तर थे।
27. क्या 'आत्मा' शरीर के साथ मर जाती है? इस पर भी अनगिनत कल्पनाएं थीं।
28. तथागत ने यह भी पूछा कि शरीर के मरने के बाद 'आत्मा' सुखी रहता है वा दुःखी रहता है? क्या 'आत्मा' शरीर की मृत्यु के बाद सुखी रहता है? इस विषय में भी श्रमणों और ब्राह्मणों के भिन्न–भिन्न मत थे। कुछ का कहना था कि यह एकदम दुःखी रहता है। कुछ का कहना था सुखी रहता है। कुछ का कहना था कि यह सुखी भी रहता है, दुःखी भी रहता है। कुछ का कहना था कि न यह सुखी रहता है औन न दुःखी रहता है।
29. 'आत्मा' के सम्बन्ध में इन सब मतों के बारे में तथागत का वही एक उत्तर था, जो उन्होंने चुन्द को दिया।
30. चुन्द को उन्होंने कहा था : ''हे चुन्द! जो श्रमण या ब्राह्मण इन मतों में से कोई भी मत रखते हैं, मैं उनके पास जाता हूँ और उनसे पूछता हूँ, 'मित्र! क्या आपका यह कहना ठीक है?' और यदि वे उत्तर देते हैं, हाँ! मेरा मत ही ठीक है, शेष सब बेहूदा है,' तो मैं उनके इस मत को नहीं मानता। ऐसा क्यों? क्योंकि इस विषय में लोगों के नाना मत हैं। मैं उनमें से किसी भी एक मत को अपने मत से श्रेष्ठ मानने की तो बात ही नहीं, अपने मत के समान स्तर पर भी नहीं मानता।''
31. अब महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि 'आत्मा' के अस्तित्व के सिद्धान्त के विरूद्ध भगवान बुद्ध ने कौन कौन से तर्क दिये हैं?
32. भगवान बुद्ध ने 'आत्मा' के विरूद्ध भी सामान्य रूप से वे ही तर्क दिये हैं जो उन्होंने 'परमात्मा' के विरूद्ध दिये हैं।
33. उनका एक तर्क तो यही था कि 'आत्मा' की चर्चा उतनी ही बेकार वा अनुपयोगी है, जितनी 'परमात्मा' की चर्चा।
34. उनका तर्क था कि 'आत्मा' के अस्तित्व में विश्वास सम्यक्–दृष्टि के विकास में उतना ही बाधक है, जितना 'परमात्मा' का विश्वास।
35. उनका तर्क था कि 'आत्मा' में विश्वास भी उतना ही मिथ्या–विश्वास का घर है जितना 'परमात्मा' में विश्वास। उनकी सम्मति में 'आत्मा' में विश्वास करना 'परमात्मा' में विश्वास करने की अपेक्षा भी अधिक खतरनाक था। क्योंकि इससे इतना ही नहीं होता कि पुरोहितों का वर्ग पैदा हो जाता है, इससे इतना ही नहीं होता कि मिथ्या–विश्वासों के जन्म का रास्ता खुल जाता है बल्कि 'आत्मा' के विश्वास के फलस्वरूप आदमी के जन्म से मरण–पर्यन्त उसके समस्त जीवन पर पुरोहित–शाही का अधिकार हो जाता है।
36. इन्हीं सामान्य तर्कों के कारण कहा जाता है कि भगवान बुद्ध ने 'आत्मा' के बारे में अपना कोई निश्चित मत अभिव्यक्त नहीं किया। कुछ दूसरे लोगों का कहना है कि उन्होंने 'आत्मा' के सिद्धान्त का खण्डन नहीं किया। कुछ औरों ने कहा है कि भगवान बुद्ध हमेशा इस प्रश्न को बचा जाते थे।
37. ये सभी मत एकदम गलत हैं। क्योंकि महाली को भगवान बुद्ध ने स्पष्ट रूप से निश्चित शब्दों में यह कहा था कि 'आत्मा' नाम का कोई पदार्थ नहीं है। इसीलिये 'आत्मा' के सम्बन्ध में तथागत का मत 'अनात्मबाद' कहलाता है।
38. 'आत्मा' के विरूद्ध सामान्य तर्क के अतिरिक्त भगवान बुद्ध ने विशेष तर्क भी दिया है जो कि उनके अनुसार 'आत्मा' के सिद्धान्त के लिए एकदम मारक तर्क ही था।
39. 'आत्मा' के अस्तित्व की स्थापना के मुकाबले के भगवान बुद्ध का अपना सिद्धान्त था नाम–रूप का सिद्धान्त।
40. यह नाम–रूप का सिद्धान्त 'विभज्ज–वाद' द्वारा परीक्षण का परिणाम है मानव–व्यक्तित्व अथवा मानव के बड़े ही सूक्ष्म कठोर विश्लेषण का परिणाम है।
41. 'नाम–रूप' एक प्राणी का सामूहिक नाम है।
42. भगवान बुद्ध के अनुसार हर प्राणी कुछ भौतिक तत्वों तथा कुछ मानसिक तत्वों के सम्मिश्रण का परिणाम है। वे भौतिक तथा मानसिक तत्व 'स्कन्ध' कहलाते है।
43. रूप–स्कन्ध प्रधान रूप से पृथ्वी, जल, वायु तथा अग्नि– इन चार भौतिक तत्वों का परिणाम है। वे 'रूप' अथवा शरीर है।
44. रूप स्कन्ध के अतिरिक्त (चित्त–चैतसिकों का समूह) नाम–स्कन्ध है, जिससे एक प्राणी की रचना होती है।
45. इस नाम–स्कन्ध को हम विज्ञान (= चेतना) भी कह सकते हैं। यूं इस नाम–स्कन्ध के अन्तर्गत, वेदना (छः इन्द्रियों तथा उनके विषयों के सम्पर्क से उत्पन्न होने वाली अनुभूति), सञ्ञा (संज्ञा) तथा संखार (संस्कार) है। विज्ञान भी इन तीनों के साथ शामिल किया जाता है। (इस प्रकार पूर्व के तीन चैतसिक और विज्ञान (= चित्त) को मिलाकर नाम–स्कन्ध होता है–अनु०)। एक आधुनिक मानस–शास्त्र–वेत्ता कदाचित् इसे इस रूप में कहना पसन्द करेगा कि चित्त ही वह मूल स्त्रोत है, जिससे सभी चैतसिक उत्पन्न होते हैं (अथवा चैतसिकों के समूह–विशेष का नाम ही चित्त हो जाता है–अनु०)। विज्ञान (= चित्त) किसी भी प्राणी का केन्द्र–बिन्दु है।
46. पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु– इन चार तत्वों के सम्मिश्रण से 'विज्ञान' उत्पन्न होता है।
47. बुद्ध द्वारा प्रतिपादित 'विज्ञान' की उत्पत्ति के इस सिद्धान्त पर एक आपत्ति उठाई जाती है।
48. जो इस सिद्धान्त के विरोधी है, वे पूछते हैं ''विज्ञान (= चित्त) की उत्पत्ति कैसे होती है?''
49. यह सत्य है कि आदमी के जन्म के साथ विज्ञान (= चित्त) की उत्पत्ति होती है और आदमी के मरण साथ विज्ञान (= चित्त) का विनाश होता है। लेकिन साथ ही क्या कहा जा सकता है कि विज्ञान (= विज्ञान) चार तत्वों के सम्मिश्रण का परिणाम है?
50. भगवान बुद्ध ने इसे इस रूप में नहीं कहा कि भौतिक तत्वों की सह–स्थिति अथवा उनके सम्मिश्रण से विज्ञान (= चित्त) की उत्पत्ति होती है। तथागत ने इसे इस रूप में कहा है कि जहाँ भी शरीर या रूप–काय है, वहाँ साथ–साथ नामकाय भी रहता है।
51. आधुनिक विज्ञान से एक उपमा लें। जहाँ जहाँ विद्युत क्षेत्र (electric field) होता है, वहाँ वहाँ उसके साथ आकर्षण–क्षेत्र (Magnetic field) रहता है। कोई नहीं जानता है यह आकर्षण–क्षेत्र किस प्रकार उत्पन्न होता है, या किस प्रकार अस्तित्व में आता है? लेकिन जहाँ जहाँ विद्युत क्षेत्र होता है, वहाँ वहाँ यह उसके साथ अनिवार्य रूप से रहता है।
52. शरीर और विज्ञान (= चित्त) में भी हम कुछ कुछ इसी प्रकार का सम्बन्ध क्यों न मान लें?
53. विद्युत–क्षेत्र की अपेक्षा से उसका आकर्षण–क्षेत्र विद्युत क्षेत्र द्वारा प्रेरित क्षेत्र (induced field) कहलाता है। तो फिर हम विज्ञान (= चित्त) को भी रूपकाय (= शरीर) की दृष्टि से उसके द्वारा प्रेरित–क्षेत्र क्यों न कहें?
54. 'आत्मा' के विरूद्ध तथागत का तर्क यहीं समाप्त नहीं होता। अभी विशेष महत्वपूर्ण वक्तव्य शेष है।
55. जब विज्ञान (= चित्त = चेतना) का उदय होता है तभी आदमी जीवित प्राणी बनता है। इसलिये विज्ञान (= चित्त = चेतनता) आदमी के जीवन में प्रधान वस्तु है।
56. विज्ञान की प्रकृति है ज्ञान–मूलक, भावना–मूलक, और क्रियाशील।
57. विज्ञान को हम ज्ञान–मूलक उस समय कहते हैं जब यह हमें कुछ जानकारी देता है, कुछ ज्ञान प्रदान करता है– वह ज्ञान रूचिकर भी हो सकता है और अरूचिकर भी हो सकता है, वह अपने भीतर घटनेवाली घटनाओं का भी हो सकता है, बाह्य घटनाओं का भी हो सकता है।
58. 'विज्ञान' को हम भावना–मूलक उस समय कहते हैं जब यह चित्त की उन अवस्थाओं में उपस्थित रहता है जो अनुकूल अनुभूतियाँ भी हो सकती हैं और प्रतिकूल–अनुभूतियाँ भी, जब भावना मूलक ज्ञान वेदना (= अनुभूति) की उत्पत्ति का कारण बनता है।
59. विज्ञान अपनी क्रिया–शील अवस्था में आदमी को उद्देश्य–विशेष की सिद्धि के लिए कुछ करने की प्रेरणा देता है। क्रियाशील विज्ञान ही संकल्पों का या इरादों का जनक है।
60. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि एक प्राणी की जितनी भी क्रियायों हैं वे या तो विज्ञान के द्वारा अथवा विज्ञान के परिणाम–स्वरूप पूरी होती हैं।
61. इस विश्लेषण के बाद भगवान बुद्ध प्रश्न करते हैं कि वह कौन सा कार्य है जो 'आत्मा' के करने के लिए बचा रहता है? 'आत्मा' के जो कार्य माने जाते हैं, वे सब तो विज्ञान (= चित्त) द्वारा हो जाते हैं।
62. जिसका कुछ 'कार्य' ही नहीं, ऐसा 'आत्मा' एक बेहूदगी है।
63. इस प्रकार भगवान बुद्ध ने 'आत्मा' का अस्तित्व असिद्ध किया है।
64. यही कारण है कि 'आत्मा' का अस्तित्व स्वीकार करना अ–धर्म है।

lkHkkj & Hkxoku c) vkj mudk /ke
i"B l- 202 l 207
vuokn & Mk- HknUr vkuUn dkslY;k;u

परिच्छेद : चार (वराह और हिरण्यगर्भ के संबंध में)

/kkMhjko % कच्छ की मृत्यु के बाद द्विजों का मुखिया कौन हुआ?

T;kfrjko % वराह।

/kkMhokj % भागवत आदि इतिहासकारों ने यह लिखकर रखा है कि वराह का जन्म सुअर से हुआ है। इसमें आपकी क्या राय है?

T;kfrjko % वास्तव में सही बात यह है कि मनुष्य और सूअर में किसी भी दृष्टि से कोई समानता नहीं है। अपनी बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए और तुम्हें अच्छी तरह समझ में आ जाए, इसलिए यहां उदाहरण के रूप में सिर्फ एक ही बात कहना चाहता हूं कि वे अपने बच्चों को जन्म देने के बाद उनसे कैसा व्यवहार करते हैं, हमें सिर्फ यही देखना है। मनुष्य जाति की नारी अपने बच्चों को जन्म देते ही वह अपने बच्चे को किसी भी तरह परेशान नहीं करती और उसे बड़े लाड–प्यार से पालती–पोसती है। लेकिन सुअरी कुतिया की तरह अपने पैदा किए पहले बच्चे को एकदम खा जाती है। उसके बाद दूसरे बच्चे को पैदा करती है। इससे यह सिद्ध होता है कि वराह की सुअरी माता ने सबसे पहले अपने सुअर बच्चे को खाकर बाद में उस मानव सुअर को पैदा किया होगा। किंतु भागवत आदि ग्रंथकारों के अनुसार, वराह यदि आदिनारायण का अवतार है, तो उसकी सर्वज्ञता और समानदृष्टि को दाग लगा या नहीं? क्योंकि वराह आदिनारायण का अवतार होने की वजह से, उसको पैदा करने वाली सुअरी को उसके बड़े सुअर भाई को मारकर नहीं खाना चाहिए था। उसने इसके पहले ही कुछ प्रबंध करके क्यों नहीं रखा था? हाय! यह पद्मा सुअरी वराह आदिनारायण की मां ही तो है न! और उसने इस तरह से अपने नन्हे–मुन्ने अबोध बालक की हत्या क्यों की? 'बालहत्या' शब्द का अर्थ सिर्फ बच्चों को जान से मारना ही होता है, फिर वह बच्चा किसी का भी क्यों न हो। किंतु इसने अपने पैदा किए हुए मासूम बच्चे की ही हत्या करके खा लिया। इस तरह के के अन्याय का अच्छा अर्थ बोध हो, ऐसा शब्द किसी शब्दकोश में खोजने से भी नहीं मिलेगा। इसको यदि डाकिनी (डायन) कहा जाए, तो डाकिनी भी अपने बच्चों को नहीं खाती, यह एक पुरानी कहावत है। उस वराह की पद्मा माता को इस तरह का अघोर कर्म करने की वजह से नरक की यातनाएं भोगने से मुक्ति मिले, इसलिए उसने ऐसा पापमुक्ति का कर्म किया, इसका कहीं कोई जिक्र भी नहीं मिलता, इसका हमें बड़ा खेद होता है।

/kkMhjko % वराह की सुअरी माता का नाम यदि पद्मा था, तो इससे यह सिद्ध होता है कि उसके सुअर पति का भी कुछ न कुछ नाम होना ही चाहिए?

T;kfrjko % पद्मा सुअरी के पति का नाम ब्रह्मा था।

/kkMhjko % इससे यही समझ में आता है कि प्राचीन काल में जानवर मनुष्यों की तरह आपस में एक दूसरे को ब्रह्मा, नारद और मनु जैसे नाम देते थे। उनके नाम इन गपोड़ी ग्रंथकारों को कैसे समझ में आए होंगे? दूसरी बात यह है कि पद्मा सुअरी ने वराह को उसके बचपन में अपने स्तन से दूध पिलाया ही होगा, इसमें कोई संदेह नहीं। किंतु बाद में उसके कुछ बड़ा होने पर गांव के खंडहरों में बहुत ही कोमल फूल–पौधों का चारा चरने की उसे आदत पड़ गई होगी कि नहीं, यह तो वही वराह आदिनारायण ही जाने। इस तरह से उनके (धर्म) ग्रंथों में कई तरह के महत्वपूर्ण सवालों के जवाब नहीं मिलते। इसलिए मुझे लगता है कि धर्मग्रंथों में जो कुछ लिखा मिलता है, वह सब झूठ है कि वराह सुअरी से पैदा हुआ है और इस तरह की झूठमूठ की बातें शास्त्रों में लिखते समय उन ग्रंथकारों को तनिक लज्जा भी नहीं आई होगी?

सेवा में,

नाम .....

पता .....

.....

.....

T;kfrjko % यह कैसी बेतुकी बात है कि तुम्हारे जैसे ही लोग उस तरह के झूठे ग्रंथों की शिक्षा की वजह से ब्राह्मण–पुरोहितों और उनकी संतानों के पांवों को धोकर पीते हैं। अब तुम ही बताओ, इसमें तुम निर्लज्ज हो या वे?

/kkMhjko % खैर, अब इन सब बातों को छोड़ दीजिए। आपके ही कहने के अनुसार, उस मुखिया का नाम वराह कैसे पड़ा गया?

ज्योतिराव : क्योंकि उसका स्वभाव, उसका आचार–व्यवहार, उसका रहन–सहन बहुत ही गंदा था और वह जहां भी जाता था, वहीं जंगली सुअर की तरह झपट्टा मारकर अपना कार्य सिद्ध कर लेता था। इसी वजह से महाप्रतापी हिरण्यगर्भ और हिरण्यकश्यप नाम के जो दो महाप्रतापी क्षत्रियों ने उसका नाम अपनी प्रतिकार की भावना व्यक्त करने के लिए सुअर अर्थात वराह रखा। इससे वह और बौखला गया होगा और उसने अपने मन में उनके प्रति प्रतिशोध की भावना रखते हुए उनके प्रदेशों पर बार–बार हमले करके, वहां के क्षेत्रवासियों को कष्ट देकर, अंत में उसने एक युद्ध में (हिरण्याक्ष) हिरण्यगर्भ को मार डाला। इसका परिणाम यह हुआ कि देश के सभी क्षेत्रपतियों में घबराहट पैदा हो गई और वे कुछ लड़खड़ाने लगे और इसी दौरान वराह मर गया।

lkHkkj & xqykexhjh
i"B l- 37 l 38
T;kfrjko Qqys] vuqokn Mk- foey dhfr

रामराज्य की कल्पना अशोक के धम्म राज्य से।

संस्कृत रामायण कर्ताओं को श्रीलंका के बारे में बिल्कुल जानकारी नहीं थी। इतना ही नहीं तो लंका से जाकर वापस आया कोई आदमी उनको नहीं मिला इन लेखकों को केवल इतना ही दिखाना था कि आठ सौ मिल समुद्र पार कर वैदिक लोग बौद्धों के पहले ही लंका गये थे। इस एक ही उद्देश से प्रेरित इन ब्राह्मणों की सोच ऐसी थी, जो वनस्पति उत्तर भारत में मिलती है, वही लंका में भी होगी। जो भाषा उत्तर भारत में बोली जाती है, वही लंका में बोली जाती होगी। इसके चलते दो हजार मिल के अंदर ही रामायण घटीत हुआ। यह बतानेवाले इन लेखको के रामायण के पात्रो को कभी भाषा की अडचन नहीं आयी। बंदर, गृध, रीस, मानव, यक्ष, और राक्षसनी कि भाषा संस्कृत। जो की वह किसी की भी मातृभाषा नहीं थी फिर भी सभी की है ऐसा आभास निर्माण किया।

बुद्ध के धम्म से ब्राह्मण धर्म पुराना है इसका विस्तार समुद्र पार द्वीपों पर हुआ था ऐसी धोखेबाजी करके स्थानिय जनतापर प्रभाव डालने के लिए झूठा रामायण रचा गया। अशोक ने लंका में धम्म प्रचारक भेजने से पहले वैदिकों ने वहाँ लष्करी विजय प्राप्त किया था। ऐसी डींगे हाकने के लिए यह संस्कृत रामायण लिखा। अशोक के जन कल्याणकारी राजसत्ता की प्रशंसा सर्वत्र हो रही थी। अशोक अपनी प्रजा को संतान मानता था। संतान समझकर प्रजा की देखभाल करने से यह काफी लोकप्रिय हुआ था। (केवल ब्राह्मणों को ही अशोक नहीं चाहिए था।) बुद्ध के धम्म का पालन करके लोकप्रिय हुए अशोक से ज्यादा वैदिकों के धर्म का पालन करने वाला राम भी इतना लोकप्रिय हुआ था कि, राम ने जलसमाधी लेते ही उसके अयोध्या के सभी प्रजा ने नदी में जान दी, ऐसी घटना घटी ऐसा लिखने से अशोक के राजसत्ता के लोकप्रियता को पर्याय के तौर ब्राह्मणों ने 'रामराज्य' का चित्र रेखांकित किया। मेरे इस प्रतिपादन को सपोट डॉ. रोमीला थापर ने लिखा ग्रंथ का जो अनुवाद डॉ. शरावती शिरगांवकर ने किया है। उनके आगे दिये गये विधान से पता चलता है – 'ऐसा वैभव एवं पवित्रता का काल मतलब आदर्श राज्य यह कल्पना इस समय (अशोक) के लोगों के मन में हमेशा थी। इसमें कोई दोराय नहीं। आगे के समय में रामराजा के कल्पना में वह संपूर्णता से स्पष्ट हुई। (मूल अंग्रेजी ग्रंथ का नाम Ashok And The Decline of Moury's)

मौर्य राजकर्ताओं की हत्या करके ब्राह्मणों ने साम्राज्य हथिया लिया, तब मौर्या को नालायक ठहराने की कोशिश ब्राह्मणों ने की। यह नालायकपन नैतिकता के बारे में सिद्ध करना ब्राह्मणों को संभव नहीं था। इसलिए मौर्या को पाखंडी करार देकर उनकी बदनामी की मुहिम ब्राह्मणों ने निकाली। वेद और यज्ञ को महत्व न देने वाला, तो पाखंडी ऐसी व्याख्या ब्राह्मणों ने की।

यज्ञ में इतना सामर्थ्य था की, बांझ महिला को भी यज्ञ के प्रभाव से बच्चा पैदा होता है। यक लोगों को बताने के लिए संस्कृत रामायण में दशरथ के पुत्र कामेष्ठी यज्ञ का झूठा वर्णन किया गया। इसी प्रकार के यज्ञ महानता की झूठे वर्णन लिखकर महाभारत और अन्य पुराण उस में जोडा गया। असंभव बातें संभव करने वाले दैवी शक्ति का यज्ञ अशोक ने नकारे वैसे ही मौर्य वंश में कोई भी राजा ने इसे स्वीकारा नहीं था। ब्राह्मण लोगों के अलावा कोई भी मूलनिवासी वेदों को एवं यज्ञ को भीख भी नहीं देता था। अंधविश्वासी लोग, ब्राह्मणों ने शिफारीश करने के बाद यज्ञ करा लेते थे। पर वे वैदिक धर्म का स्वीकार किया इसलिए नहीं तो भला हो, अपने उपर का संकट टले, इच्छा पूर्ती होने इन अपदायों से। अशोक ने बली देने पर प्रतिबंध लगाने वाला कानून बनाया था। इसका सबसे ज्यादा प्रभाव यज्ञ में दिये जाने वाले पशुबली देने वालें ब्राह्मणों को पड़ा वैसे ही वामाचार करने वाले संप्रदाय पर पड़ा पर वामाचारी या तांत्रिक संप्रदाय ने अशोक को पाखंडी नहीं ठहराया। ब्राह्मणों ने मात्र अश्वासूर कहकर गालियाँ दी। (महिषासूर, नरकासूर इस चाल पर अशोक का अश्वासूर) असूर यानी राक्षस ऐसा भी अर्थ मानकर अशोक को अश्वासूर कहा जो पुराणकारों ने गाली की तरह थी। रावण को तो सीधा–सीधा 'राक्षस' गाली दी और बुद्ध को 'चोर' गाली दी। बुद्ध को चोर कौन कहता है तो स्वंय राम।

पुराणों के कल्पना के अनुसार राम सातवा अवतार, यह राम त्रेता नाम के ब्राह्मण कल्पना के युग में हुआ। बुद्ध को पुराण ने नौवा अवतार माना। वह ब्राह्मण कल्पना के कली युग का, त्रेता युग का और कली युग के सारे साल मायनस किये तो त्रेता और कली के बीच का अंतर द्वापर युग के आठ लाख चौसष्ट हजार वर्ष बाकी रहते हैं। राम बुद्ध के पहले कम से कम आठ लाख चौसष्ट हजार वर्ष पूर्व हुआ ऐसे कहा जाये तो उसे फिर बुद्ध का अर्थ चोर यह कैसे पता चला?

यहाँ पर कोई कहेगा राम देव का अवतार था, इसलिए कलीयुग में उसके बाद दस, बारह लाख वर्षों से बुद्ध जन्म लेगें यह बात राम को पता थी, तो फिर आश्रम में सीता नहीं! यह देखकर राम हैरान क्यों हुआ? उसे रावण भगा ले गया और लंका में लाकर रख दिया यह बात उसके गुजरते दिनों के जीवन की अत्यंत व्याकूल करने वाली घटना उसे क्यों पता नहीं चली? इस प्रश्न के उत्तर यही है की, रामायण बुद्ध के बाद लिखा गया। बुद्ध के बाद ईसा पूर्व 187 तक जैन, आजीवक और बौद्ध नृपती की राजसत्ता थी और ब्राह्मणों की एक भी राजसत्ता नहीं थी। तब बुद्ध को गालियाँ देने का ढ़ाँढस ब्राह्मणों को क्यों नहीं हुआ?

ईसा पूर्व 187 में बौद्ध नृपती बृहदरथ मौर्य की पुष्यमित्र और अग्रिमित्र शुंग इन पिता पुत्रों ने हत्या करके साम्राज्य पर कब्जा करते ही ब्राह्मणों ने बुद्ध को गाली गलौच देने का ढ़ाँढस हुआ। इसलिए शुंग काल में रचे इस रामायण का राम कहता है ''यथैव चोर तथैव बुद्ध'' (जैसा चोर वैसे बुद्ध) कहने का तात्पर्य यह है कि, बुद्ध धम्म और अशोक का धम्म राज्य इनका महत्व नष्ट करने के लिए इस संस्कृत रामायण की रचना की गयी। ऐसी रचना करने के लिए अनुकूल वातावरण ईसा पूर्व दूसरी सदी और पहली का समय ब्राह्मण राजसत्ता थी बाद में ईसा पूर्व चौथी सदी के बाद गुप्त वंश राजसत्ता में रामायण अधिक ब्राह्मण समर्थक की बना।

lkHkkj & inf"kr jkek;.k
i"B l- 61 l 63
Jhdkr 'kV;